मासिक पत्रिका - वर्ष ०९, अंक ०२ 'माघ-फाल्गुन' वि. सं. २०८१ (फरवरी २०२५ ई.) श्रीकृष्ण सं. ५२५०

मान मन्दिर बरसाना

भारतीय सनातन संस्कृति
का महापर्व

महाकुम्भ (२०२५ ई.) प्रयागराज

मूल्य १०/-

रसमण्डप, गह्वरवन 'बरसाना',
मान मन्दिर की साध्वियों द्वारा नित्य-संकीर्तन (आराधना)

अनुक्रमणिका

विषय- सूची		पृष्ठ- संख्या
१	'अखण्ड भारत' की नींव 'एकता व दृढ़ता'	०५
२	श्रीइष्ट-कृपा का फल 'नाम-आराधन'	०९
३	वास्तविक तप 'दीनता'	११
४	निर्मल मन की पहिचान 'अहंशून्यता'	१५
४	विलक्षण ब्रजभावुक संत	१७
५	परमादर्श 'ब्रज-रहनी'	२१
६	'भावना' ही 'अव्यय श्री'	२३
७	श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी का संकीर्तन-प्रभाव	२५
८	सच्ची शरणागति का स्वरूप	२८
९	परम प्रेममय तत्त्व 'राधा'	२९
१०	सुदैन्य-भाव ही भक्ति	३०
११	अनासक्ति से 'आराध्य-कृपा'	३१
१२	गौ-सेवा से श्रीकृष्णप्रेम-प्राप्ति सहज	३३

।। राधे किशोरी दया करो ।।

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

INSTAAL करें --- PLAY STORE से-----

MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से FREE -

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल** , प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर , गह्वरवन, बरसाना, मथुरा** (उ.प्र.)

mob. **राधाकांत शास्त्री** .....9927338666, Website :www.maanmandir.org , (E-mail :info@maanmandir.org)

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – **सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।** (श्रीमद्भागवत३/७/४१)
अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

प्रकाशकीय

यदि सर्वत्र श्रीभगवान् की सद्भावना की जाए तो बुद्धि निर्मल हो जाएगी और समस्त तीर्थ-धाम 'श्रीइष्ट' रूप दिखाई देने लगेंगे । अनुभावना तब तक करते रहें जब तक कि वह भक्तियोग न बन जाए, श्रीभक्तियोग की सिद्धि होने पर भावना सहज होने लगेगी ।

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम् ।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ॥

(दृग्दृश्यविवेकः अथवा वाक्यसुधा – १ भारती तीर्थ स्वामिना विरचितः)

रूप को देखने वाले न नेत्र हैं, न मन और न बुद्धि ही, ये सब तो स्वयं दृश्य है । **'साक्षी दृक् इव न तु दृश्यते'** वास्तविक द्रष्टा तो आत्मा ही है । नेत्र, मन, बुद्धि, आत्मा (अर्थात् भगवान् का अंश) – ये सब क्रमशः एक दूसरे से सूक्ष्म हैं और श्रेष्ठ भी । भूल यहीं होती है कि द्रष्टा में जब तक भक्तियोग सिद्ध न हो तब तक अनुभावना का क्रम निरन्तर रखना आवश्यक है । असत् वस्तु में चित्त का दौड़ना कल्पना है एवं सत् वस्तु में चित्त का दौड़ना भावना है ।

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ (श्रीभागवतजी ८/२२/२६)

स्वयं भगवान् कह रहे हैं – अच्छे कुल में जन्म, सत्कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य एवं धनादि से स्तम्भ (ऐंठ) भाव आता है । स्तम्भ न होना ही मेरी वास्तविक कृपा है ।

'यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥'(श्रीभागवतजी ८/२२/२४)

मद से स्तम्भ आता है और फिर वह मनुष्य, भक्त व भगवद् अवमानना से अपराधी बन जाता है । ध्यान रहे, अहं व स्तम्भ की उत्पत्ति श्रेय (कल्याण) के समस्त मार्ग बन्द कर देगी । अतः अनन्यता का मद न करें, सामान्य से सामान्य भक्त के अपराध से भी सावधान रहें । रसिकों ने कहा है – **अब हौं कासौं बैर करौं ।**

प्रानी सब समान अवलोकौं, भक्तनि अधिक डरों ॥ (श्रीबिहारिनदेव जी-सिद्धांत के पद -९८)

पुनः **'भक्त साधारण के अपराधहि काँपत डरनि हियो ॥'** (श्रीबिहारिनदेवजी-सिद्धांत के पद -५८)

अहं से स्मृति का नाश होने पर भगवान् की स्मृति नहीं रहती; मैं साधु, मैं विरक्त, मैं सन्यासी, मैं अनन्य ..... अशुद्ध स्मृति ही रह जाती है । श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी के वचन –

नाहं विप्रो न च नरपति-र्नापि वैश्यो न शूद्रो, नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल-परमानन्द-पूर्णामृताब्धे-र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दास-दासानुदासः ॥

प्रत्येक साधक भी यही सोचे कि मैं न ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र, न ब्रह्मचारी, न गृहस्थी, न वानप्रस्थी, न सन्यासी किन्तु निखिल परमानन्द के पूर्ण अमृत समुद्र गोपिकाकान्त के दासों के दासों का दास हूँ ।

सभी प्रकार के संकीर्ण विचारों से शून्य 'सनातन धर्म' की उदारता व्यापक व विशाल है । एक ऐसा समय था जब सम्पूर्ण पृथ्वी पर एकमात्र सनातन धर्म ही था; इसकी एक आंशिक झलक आज वर्तमान में 'तीर्थराज प्रयाग के महाकुम्भ २०२५' में सभी लोग बहुत अच्छी तरह से देख सकते हैं । इसीलिए सभी संत-महापुरुष व देवगण भी धर्मप्राण भूमि 'भारतवर्ष' में जन्म लेने की याचना करते हैं ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

'अखण्ड भारत' की नींव 'एकता व दृढ़ता'

भारतवर्ष का गौरव है – हमारी आध्यात्मिकी पावन परम्परा । विकास के धोखे में यदि हमारे द्वारा अपने अध्यात्म का ही विनाश हो गया तब क्या सिद्ध होगा, विकास अथवा विनाश ? अतः भारतीय संस्कृति व संस्कारों का संरक्षण करते हुए, धार्मिक भावनाओं को आहत न करते हुए, विकास पथ पर चलें, पश्चिम की विलासिता का अंधानुकरण न करें । क्योंकि संस्कारों का एक समुदाय ही संस्कृति है, जो धर्म का आधार है । संस्कार-शून्य धर्म कैसा ? धर्म क्या है ? धारण करने योग्य बातें ही धर्म हैं । संकीर्णताओं ने हमारे धर्म को कलंकित कर दिया । बहुधा बात-बात में लोग धर्म-निरपेक्ष बन जाते हैं; अरे ! धर्मनिरपेक्ष क्यों बनते हो, साम्प्रदायिक संकीर्णता से निरपेक्ष बनो । आज साम्प्रदायिक संकीर्णताएँ सनातन संस्कृति की पावन परम्पराओं एवं भक्ति परायण समाज के लिए एक अभिशाप है । मत भूलो कि यह धर्मभूमि 'भारत माता' मात्र दर्शनीय न होकर उपासनीय-आराधनीय भी है । भारतभूमि की सेवा का पावनकारी प्रयत्न सर्व समाज को करना चाहिए और भक्तजनों को तो अपना परम कर्तव्य समझ कर इस मंगलमय कार्य में तत्पर होना चाहिए । आज विश्व में करोड़ों की संख्या में भक्तों का समुदाय है और उनमें लाखों की संख्या में ऐसे भी हैं जो ज्ञान की दृष्टि से, विचार की दृष्टि से, अर्थ की दृष्टि से, सर्वथा सम्पन्न हैं; उसके पश्चात् भी सनातन संस्कृति का इतना बड़ा ह्रास, यह आश्चर्य की बात है, इसका मूल कारण है आध्यात्मिक धरातल पर पारस्परिक विद्वेष और संकीर्णता की भावनाएँ । हमारे पूर्ववर्ती आचार्यगण, संत-महापुरुषजन इन विघटनकारी भावनाओं से सर्वथा मुक्त थे, परस्पर में सौहार्द और सद्भावनाएँ भरी हुई थीं । स्मरण करें हमारे पूर्वाचार्यों की कितनी निर्मल उपासना थी । वस्तुतः सर्व ग्रन्थ, सन्त, पथ, परम्परा एवं सम्प्रदाय आदि का एकमात्र तात्पर्य विवाद मुक्त होकर विषमताओं से रहित होकर श्रीभगवान् की शरणागति में ही है ।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ (कठोपनिषद् १/२/१७)

श्रीभगवान् का आश्रय ही सबका सार है । दार्शनिक मतभेदों को लेकर भेदवाद को नहीं बढ़ाना चाहिए । 'दार्शनिक-पक्ष' बौद्धिक-पक्ष है, इसमें विवेकी उपासक को उलझना नहीं चाहिए । संसार में सबको भगवान् की शरण में जाने का अधिकार है, चाहे वह समर्थ हो अथवा असमर्थ । क्योंकि श्रीभगवान् की शरणागति में न श्रेष्ठ कुल की अपेक्षा है न अत्यधिक बल की ही, न उत्तम काल की आवश्यकता है, न किसी शुद्धि की ही । प्राणीमात्र शुचि-अशुचि सभी अवस्था में सभी काल में भगवद्शरणागति ग्रहण कर सकता है । श्रीसूरदासजी ने भी कहा है –

हरि, हरि, हरि, सुमिरौ सब कोइ । नारि-पुरुष हरि गनत न दोइ ॥ (सूर विनय पत्रिका-१४७)

जगद्गुरू स्वामी श्रीरामानन्दजी ने रैदास (जो कि चमार थे) को भी शिष्य बनाया था, जो कलिकाल की गोपी श्रीमीराजी के गुरू हुए । कर्मकाण्ड प्रधान दक्षिण भारत की भूमि में प्रकट हुए शेषावतार श्री रामानुजाचार्य जी कावेरी स्नान के लिए जाते समय एक विप्र के कंधे का सहारा लेते एवं लौटते समय धनुर्दास के कंधे पर हाथ रखकर आते, इससे अन्य ब्राह्मण शिष्यों को बड़ा रोष होता । स्नान को जाते हुए तो ब्राह्मण का स्पर्श और लौटते हुए शूद्र का स्पर्श ! राम, राम, राम ! ये तो आचरण भ्रष्ट हो गये हैं । बाद में श्री रामानुजाचार्य जी ने उन द्वेषियों को श्री धर्नुधरदास जी के भक्ति, त्याग एवं वैराग्यमय उदात्त व्यक्तित्व से अवगत कराया ।

भारतीय आर्य संस्कृति में अनेकानेक स्त्रियाँ जैसे देवहूति, सुनीति, सती, मदालसा, सुबुद्धिनी, ब्रज की गोपी, रतिवन्ती, अरुन्धती, अनसूया, लोपामुद्रा, सावित्री, गार्गी, शाण्डिली, गणेशदेई, झालीरानी, शुभा, शोभा, कुन्ती, द्रोपदी, दमयन्ती, सुभद्रा, प्रभुता, उमा भटियानी, गोराबाई, कलाबाई, जीवाबाई, दमाबाई, केशीबाई, बाँदरानी, गोपालीबाई, मीराबाई, कात्यायनी, मुक्ताबाई, जनाबाई, सखूबाई, सहजोबाई, करमैतीबाई, रत्नावती, कुँअरानी, कान्हूपात्रा, चिन्तामणि, पिंगला, हम्मीर, सूर्य परमाल, सरदारबाई, लालबाई, वीरमती, विद्युल्लता, कृष्णा, चम्पा, पद्मा, संघामित्रा, अहिल्याबाई आदि के रूप में आदर्श माता, आदर्श भगिनी, आदर्श पत्नी, आदर्श पुत्री, आदर्श रानी, आदर्श वीरांगना, आदर्श राजनीति निपुणा, आदर्श

कार्यकुशला, आदर्श ब्रह्मवादिनी, आदर्श वक्री की भूमिका निभाती रही हैं । आज यदि ये न होतीं तो भारतीय आर्य संस्कृति में आदर्श स्त्रियों का स्थान शून्य ही रह जाता । नारी शक्ति के प्रति आर्यमेदिनी के युगप्रवर्तक धर्मप्रचारक स्वामी विवेकानन्द के उदात्त विचार आज के प्रत्येक धर्म-प्रचारक को पढ़ने चाहिए । स्वामीजी का 'women of india' नामक ग्रन्थ एवं नारी शक्ति सम्बन्धी आपके अन्य सुन्दर विचारों का संग्रह 'our women' पुस्तक रूप में प्रकाशित है । आज के युग में स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, एक शिष्य के इस प्रकार पूछे जाने पर स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा – छात्राओं को जीवन में सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती और मीराबाई का चरित्र सुना-पढ़ाकर अपने जीवन को इसी प्रकार समुज्ज्वल करने का उपदेश दें, इसके साथ ही शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य एवं सुरक्षा की शिक्षा भी आवश्यक है । मेरी इच्छा है कि कुछ बालक ब्रह्मचारी एवं बालिकाओं को ब्रह्मचारिणी बनाकर उनके द्वारा देश-देश, गाँव-गाँव में जाकर अध्यात्म का प्रचार-प्रसार कराया जाए । ब्रह्मचारिणी देवियाँ घर-घर में जाकर स्त्रियों में आध्यात्मिक विद्या के द्वारा उनकी भक्ति-शक्ति को जगाएँ ।

कालकूट विष का प्रभाव तो श्रीशिवजी ने समाप्त कर दिया, जिससे विश्व की रक्षा हुई; इस भेदजन्य विषमता रूप कालकूट को समाप्त करने के लिए 'एकता व दृढ़ता' के सिद्धान्त पर चलना होगा; इस विष की उत्पत्ति का कारण है शास्त्र मत का अन्यथा रूप में स्थापन । भगवान् ने संसार का सृजन किया और सनातन काल तक समाज को सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए शास्त्रीय सिद्धान्त प्रदान किये और निर्देश किया – **'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ'** (श्रीगीताजी १६/२४) परन्तु जब शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुरूप हम स्वयं को ढालते हैं तो सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में सौहार्द व माधुर्य का संचार होता है और जब अपनी मिथ्या मान्यताओं की पुष्टि के लिए अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए शास्त्र को अपने अनुरूप ढालने का कुत्सित प्रयत्न करते हैं तो समाज में कटुता व विषमताओं का कालकूट विष पैदा होता है, जो कि सनातन संस्कारों, परम्पराओं का विनाशक सिद्ध होता है । जैसे विवाह एक शास्त्रीय परम्परा है और उसका तात्पर्य निवृत्ति है, न कि विलासिता, भोगवादिता अर्थात् संयमित और नियन्त्रित जीवनचर्या पूर्वक भजनोन्मुख होना है न कि भोग परायण होकर आत्मनाश करना । श्रीकृष्ण के द्वारा यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट है – **लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना । व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥** (श्रीभागवतजी ११/५/११) हमारी वैदिक संस्कृति में विवाह भी एक संस्कार है । मैथुन से निवृत्ति कराना ही विवाह का लक्ष्य है, जिससे कि मनुष्य एक स्त्री से ही सम्बन्ध रखे, ऐसा न हो कि वैषेयिकता के बढ़ते वह श्वानवृत्ति ही ले ले, मांस भक्षण के लिये लोग पशु-हिंसा करने लगे अतः हिंसा-निवृत्ति के उद्देश्य से यज्ञपशु के स्पर्श का विधान बनाया, मद्यपान की निवृत्ति के लिये सौत्रामणि यज्ञ में सुरा सूँघने अथवा सेवन की भी जो व्यवस्था है, उसका लक्ष्य है लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति पर नियंत्रण किन्तु मनुष्य निवृत्ति पर विचार करता नहीं, यही सोचता है कि शास्त्रों ने भी प्रवृत्ति अर्थात् विषयभोग, मांस-भक्षण, मदिरापान की आज्ञा दी है । इस आत्मविनाशक दोष को विनष्ट करने के लिए वास्तविक विवेक (बोध) की अति आवश्यकता है, जो विशुद्ध संतजनों के सत्संग से ही प्राप्त होता है; अतः श्रीसंत-वाणी का श्रवण-मनन करके उसके अनुसार अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलना सभी लोगों के लिए अत्यन्त अनिवार्य है ।

शास्त्र में समाज को चार जातियों में विभाजित किया, जिसका तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था है क्योंकि भेद के बिना व्यवहार (व्यवस्था) सम्भव नहीं । व्यावहरिक जीवन में, सर्वत्र पिता, पुत्र, भ्राता, माता, बहन, पत्नी, वैद्य, शिक्षक अधिवक्ता आदि भेद हैं परन्तु इस भेद का तात्पर्य व्यवस्था में है न कि विषमताओं में । इसी प्रकार भारतवर्ष में जाति-व्यवस्था कल्याण की दृष्टि से बनाई गई है, और यह किसी मानव की कल्पना नहीं अपितु स्वयं भगवान् के द्वारा स्थापित है जिससे वर्ण व्यवस्था के अनुसार लोग कर्मों का आचरण करें – **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः । तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥** (श्रीगीताजी ४/१३) अर्थात् गुण व कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – ये वर्ण व्यवस्था मेरे ही द्वारा बनाई गई है ।ब्राह्मण को अध्ययन–अध्यापन (शिक्षा विभाग); क्षत्रिय को युद्ध, शौर्य, पराक्रम (रक्षा विभाग); वैश्य को कृषि, गोरक्षा, व्यापार (धनार्जन विभाग); शूद्र को सबकी सेवा (सेवा विभाग) । 'सेवा' वह साधना है जिससे भगवान् अतिशीघ्र प्रसन्न होते हैं । **'यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः'** (श्रीभागवतजी ३/६/३३) समाज के लाभ हेतु भगवान् ने चातुर्वर्ण्य की रचना की, जिससे सभी व्यवस्थायें सुचारु रूप से चलती रहें किन्तु स्वार्थी

लोगों ने अपने-अपने स्वार्थ हेतु भेदबुद्धि बढ़ाकर उन्हें कलुषित कर विषमता का संचार कर समाज का विनाश किया । वोट-बैंक बनाकर प्रजातन्त्र को दूषित किया । इससे वैदिक संस्कृति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का पावन लक्ष्य बाधित हुआ है । आज प्रायः मानव का रिसीवर (श्रद्धात्मक ग्राहक पक्ष) दूषित है, अतः सबको राग-द्वेष में बदलकर रख दिया । इसी प्रकार सम्प्रदाय-व्यवस्था भगवत्प्राप्ति का सीधा मार्ग है, जिस पर आँख बंद करके दौड़ते हुए चले जाओ । न स्खलन का भय है, न पतन का ही । **'धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥'** (श्रीभागवतजी ११/२/३५) जिस प्रकार समाज में 'जाति-प्रथा' एक विष बन गई, भेद-कलह का कारण बन गई, उसी प्रकार जो 'अनन्यता' भगवत्प्राप्ति का सीधा मार्ग थी, गृहीता (रिसीवर) दूषित होने से वह समाज के लिए विष बन गई । अरे, क्या अपने पूर्वाचार्यों की वाणी और लक्ष्य भी भूल गये !! आचार्यवाणी अभावोत्पत्ति के लिए बिल्कुल नहीं है, यह तो समझने वालों की अल्पज्ञता है कि वे उनके भाव की गहराई में तो उतर नहीं पाते, शब्दों में सिमिट जाते हैं । जिस प्रकार समुद्र-मंथन से विष-प्राप्ति लक्ष्य न रहते हुए भी हुई, उसी प्रकार सम्प्रदाय-स्थापना भेद रूप विष-प्राप्ति के लिये न होकर भगवदाराधन रूपी अमृत-प्राप्ति के लक्ष्य से हुई किन्तु उससे सर्वप्रथम भेदभाव रूपी विष उत्पन्न हुआ, जिससे हमारा समाज विषाक्त होकर अपराध से दग्ध हो उठा । 'सम्प्रदाय' की सच्ची परिभाषा तो यही है – **'संप्रदीयते यस्मिन् सः सम्प्रदायः'** जिसमें सम्यक् वस्तु को प्रदान किया जाये, वह है सम्प्रदाय । सम्यक् वस्तु अर्थात् अध्यात्म अथवा सद्वस्तु । सम्प्रदायों में दीक्षाविधान इसलिए नहीं था कि हम भेदबुद्धि में पड़कर विभक्त हो जाएँ । दीक्षा क्या है ? दिव्य भाव का दान ही दीक्षा है । **'दिव्यं भावं यतो दद्यात् क्षिणोति दुरितानि च । अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वारम्भ विशारदैः ॥'** (नारदपुराण ६४/२) गुरुदेव दिव्य भावों का दान करते हैं, जिनसे पाप की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है । इन दिव्य भावों के स्थान पर यदि गुरु ने संकीर्ण विचार दे दिये तो समझो विष दे दिया । आजकल भाव के स्थान पर अभाव-दान बहुत हो रहा है । अभाव कलि का रूप है । परम रस-रसिक श्रीहिताचार्यजी ने कलि-कालुष्य को नष्ट किया – **हरी सब कलिकाल की भय कृपा रूप जू वपु धर्‌यो ॥** (श्रीहितमंगलगान प्रकरण १२/२) आज हम भेदोत्पन्न करके यदि कलहादि कलि-कालुष्य को बढ़ाते हैं, तो क्या यही आचार्यों का अनुगमन है ? **'कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।'** (श्रीभागवतजी ११/२१/२०) क्लेश, क्रोध – ये सब कलि के ही रूप हैं, अतः एकाग्र मन से विचार करके सदसद्विवेचिनी सात्त्विकी बुद्धि के निर्णीत सिद्धान्त पर ही चलें । समग्र संसार ही गुण-दोषमय है, अतः सारासार का ज्ञान आवश्यक है – **जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार । सन्त हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥** (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ६) साधक को हंसवत् नीर-क्षीर का विवेक होना आवश्यक है । जिससे ग्राह्य का ग्रहण कर सके एवं त्याज्य का त्याग कर सके । यह गुण परीक्षितजी के अन्दर था – **नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् । कुशलान्याशु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥** (श्रीभागवतजी १/१८/७) भ्रमरवत् सारग्राही राजा परीक्षित ने मलपुञ्ज होते हुए भी कलि में कोई दोष न देखकर एक महान विशेषता (संकीर्तन की सर्वाधिक महिमा) देखी । इसी प्रकार साधक को आराधनार्थ सम्प्रदाय-परम्परा का ग्रहण एवं संकीर्णता के विष का त्याग करना चाहिए । रोगी को पथ्य (औषधि-सेवन) आवश्यक है लेकिन कुपथ्य का निवारण उससे कहीं अधिक आवश्यक है । अतएव श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने कहा – **'विरोधिनो रूपमथापि ज्ञेयम्'** (दशश्लोकी) विरोधी तत्व का ज्ञान परम आवश्यक है । इसीलिए रामचरित्र छोड़कर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने सर्वप्रथम गुण-दोष का वर्णन किया – **तेहि तें कछु गुन दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥** (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ६) साधक को बहुत चतुर (दक्ष) होना चाहिए (विवेकपूर्वक सावधानी से भक्तिमय सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए) ।

श्रीभागवतजी में सृष्टि क्रम में एक बहुत ही अच्छा प्रेरणाप्रद प्रसंग है कि जितने मूलभूत तत्त्व हुए, वे सृष्टि को नहीं बना पाए, इसका क्या कारण था, कारण यह था कि ये आपस में मिल नहीं पाए । बिना संगठन के कोई कार्य नहीं हो सकता । जिस 'घर, परिवार, गाँव, समाज, देश' में प्रेम है, वहाँ स्वतः उन्नति होगी, प्रगति होगी । जैसा कि 'रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड – ४०' में कहा गया है – **'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥'** जहाँ भी फूट (कलह) है, वहाँ 'कलि' का प्रवेश हो जाता है और विनाश होने लगता है । इसी तरह जितने भी सृष्टि के आधारभूत तत्त्व थे, ये पैदा होकर भी सृष्टि नहीं कर पाये, क्यों नहीं कर पाए क्योंकि इनमें रस नहीं था, परस्पर में प्रेम नहीं था । रस और प्रेम तो

भगवान् का स्वरूप है, जब श्यामसुन्दर आयेंगे, इनके भीतर प्रवेश करेंगे तब ये तत्त्व कुछ कार्य कर पायेंगे । तुम कुछ भी पाना चाहते हो, लोक-परलोक में सुख, आनन्द (सच्ची सम्पत्ति) पाना चाहते हो तो सबसे पहले प्रेम और रस आवश्यक वस्तु है । इसीलिए शुकदेव जी आगे कहते हैं – **यदैतेऽसङ्गता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः । यदाऽऽयतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥** (श्रीभागवतजी २/५/३२) जब सभी तत्व सृष्टि को नहीं बना पाए, तब भगवान् की शक्ति से ये एकत्रित हुए । (इसे ऐसे समझो कि जिस घर में प्रेम है, वहाँ भगवान् की कृपा है और नहीं तो दो आदमी भी साथ रहेंगे तो लड़ेंगे ।) इसलिए भगवत्कृपा का सबसे बड़ा फल है एकता और प्रेम । अब विचार करो कि सृष्टि उत्पन्न करने के लिए देवता और समस्त तत्व उत्पन्न हो गए किन्तु भगवत्कृपा के बिना आपस में मिल नहीं सके, संगठित नहीं हो पाए । प्रेम ऐसी वस्तु है, 'प्रेम' सबका संगठक तत्व है और बिना इसके कोई भी वस्तु हो, चाहे देवता हो या कोई हो, वह पूर्णतया निष्क्रिय है । इसीलिए तो कहा गया है – **'प्रेम हरि को रूप है, हरि प्रेम को रूप ।'** ये श्रीकृष्ण ही तो प्रेमरूप हैं । जब सभी देवता उत्पन्न होकर इधर-उधर डोलते रहे, सृष्टि रचना नहीं कर पाए तो भगवान् श्यामसुन्दर ने उनको प्रेरित किया, उनको आपस में मिलाया, संगठन किया तब सहस्र वर्षों के बाद एक अंडा ब्रह्माण्ड बना, उस 'अण्डे' अर्थात् ब्रह्माण्ड को प्रभु ने जिवाया तब उसमें से विराट पुरुष निकला । अतः कथनाशय है कि हे राष्ट्र व धर्म प्रेमीजनो !! हम लोगों ने अपनी नासमझी में बहुत कुछ गँवा दिया किन्तु अब यह धारण कर लें कि भारत केवल एक भूमि ही नहीं है प्रत्युत इस भूमि पर जिस महान संस्कृति का उद्भव व पल्लवन हुआ है, वही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, जिसकी रक्षा करना प्रत्येक भारतवासी का परम कर्त्तव्य है । हम उन परिस्थितियों को जन्म न दें जो देश, समाज एवं स्वयं का विभाजन कराती हों । कटु होते हुए भी सत्य तो यह है कि विधर्मियों के द्वारा हमारा उतना विनाश नहीं हुआ, जितना हमारे अपनों के द्वारा हुआ ।

अब हम सब सनातनधर्म प्रेमियों को एकता के सूत्र में बँधकर एक जुट होकर रहना है । जब हम सबकी भावनाएँ एक होंगी तो हमारा धर्म सुदृढ़ होगा, जिससे विधर्मी लोग कुछ नहीं कर सकेंगे । जब-जब हमारे धर्म पर कुठाराघात हुआ, तब-तब 'एकता व दृढ़ता' रूपी ढालों से ही हम व हमारा सनातन धर्म बच पाया है । हम सभी सनातन धर्मावलम्बियों को 'एक और दृढ़' होने की अति आवश्यकता है । अभी चल रहे तीर्थराज प्रयाग के महाकुम्भ को देखने से 'एकता व दृढ़ता' का स्वरूप साक्षात् दिग्दर्शित हो रहा है । इस बार सबसे अधिक क्षेत्रफल में महाकुम्भ लगा हुआ है व सर्वाधिक संख्या में साधु-संत-महात्मा व आचार्यजन कल्पवास कर रहे हैं । इस महाकुम्भ की सुचारु व्यवस्था व संगठन को देखकर सनातन हिन्दू संस्कृति की महिमा का आभास विद्वेषी व विधर्मी लोग भी कर रहे हैं । महाकुम्भ जैसे महापर्व हमारी सनातन संस्कृति के गौरव को प्रकट करते हैं । वर्तमान के 'प्रयागराज महाकुम्भ २०२५' में 'भारतीय संस्कृति व सनातन धर्म' की उदारता, विशालता व सर्वकल्याणकारिता का मंगलकारी प्रभाव केवल भारतवर्ष पर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व पर पड़ रहा है । देश-विदेश से करोड़ों की संख्या में जन समुदाय आ रहा है और तीर्थराज प्रयाग के त्रिवेणी-संगम में स्नान तथा परम पावनकारी 'कथा-कीर्तन' को श्रवण करके परमानन्द का अनुभव कर रहे हैं । सभी लोग हिन्दुत्व की असीम महिमा की सराहना कर रहे हैं । भक्तिभाव से रात-दिन व्यवस्था के सम्भालने व देखरेख में लगे हुए प्रशासनिक अधिकारियों, आदरणीय मुख्यमंत्रीजी, प्रधानमंत्रीजी के अथक प्रयास की भारतीय व विदेशी लोग भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं ।

हे हिन्दुओ ! अब अपने स्वरूप में जागो, अपनी गौरवशालिनी सनातन संस्कृति का संरक्षण-संवर्द्धन करो, जिससे भारतवर्ष पुनः 'विश्वगुरु' के पद पर प्रतिष्ठित हो । जो अपने भक्तिमय दिव्य प्रकाश से समस्त संसार को प्रकाशित करता है, उसी को 'भारत' कहते हैं । श्रीसंत-महापुरुषों की आराधन-शक्ति से अवश्य ही वह दिन दूर नहीं है, जब भारत 'अखण्ड भारत' से आलोकित होगा ।

अध्यक्ष -
रामजीलालशास्त्री,
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीइष्ट-कृपा का फल 'नाम-आराधन'

बाबाश्री के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' (७/७/२००१) से संकलित

जो अच्छे लोग होते हैं, वे मरकर ऊर्ध्व लोकों में जाते हैं, वहाँ से पानी की बूँदों, ओस की बूँदों के द्वारा नीचे उतरते हैं, अतः उनका पहला रूप मेघ-रूप, जल रूप होता है; यह पहली अग्नि है । फिर यहाँ आकर वे पेड़-पौधा, घास, मूली, अन्न-गेहूँ आदि में घुसते हैं; यह दूसरी अग्नि है कि वे अन्न, साग-सब्जी आदि कुछ भी बनते हैं । घास बन गये तो गाय ने खाया तो दूध बन गया । तीसरी अग्नि यह है कि अन्न, साग आदि को मनुष्य-स्त्री खाते हैं तो जठराग्नि में जाता है । चौथी अग्नि है कि पुरुष द्वारा खाये जाने पर वीर्य बनता है तथा स्त्री-पुरुष के सम्भोग के द्वारा गर्भ में जाता है, पांचवी अग्नि यह है कि वहाँ वह तपता है, तब वह मनुष्य बनता है । इसको पंचाग्नि विद्या कहा गया है । जब पिता के वीर्य से होते हुए वह माता के गर्भ में पहुँचा तो वहाँ पास में जठराग्नि होती है, जो भोजन को पका देती है । जो कुछ भी खाओ, सब हजम हो जाता है । भगवान् वहाँ जीव की रक्षा करते हैं । **'पावक जठर जरन नाहिं दीन्हो'** पावक जठर' अर्थात् पेट की आग । उससे बाहर निकालकर – **'कंचन-सी मम देह करी ।'** भगवान् ने गर्भ में जठराग्नि से जीव को बचा लिया, किसी भी अंग को जलने नहीं दिया और सोने जैसा शरीर दिया । **'तुम प्रभु मो सो बहुत करी ।'** जब हम माता के गर्भ में थे, उस काल कोठरी में थे, जहाँ न हवा थी, न पानी था । वहाँ हम तो प्रभु को भूल गये किन्तु प्रभु हमें नहीं भूले । उन्होंने वहाँ हमारी रक्षा की । **'गरभ वास अति त्रास अधो मुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी ।'** भगवान् ने सोने जैसी काया बना दी । गर्भ में जीव भगवान् से प्रतिज्ञा करता है कि बाहर आकर मैं दिन-रात तुम्हारा भजन करूँगा । **'जग में जनम पाप बहु कीन्हे'** किन्तु संसार में आकर जीव भगवान् को भूल गया और मल-मूत्र के भोग में, धन-दौलत की आसक्ति में फँस गया; इस तरह चेतनाशून्य होकर माया के घोर अन्धकार में भटकने लगा । सांसारिक भोग से उसके पुण्य नष्ट हो गये । **'आदि अन्त लौं सब बिगरी'** आदि अर्थात् शुरुआत में जो कुछ थोड़े-से पुण्य थे, वे सब भोग के कारण नष्ट हो गये । भोग भोगने से सारे पुण्य जल जाते हैं । आखिरी बात यह है कि अब तक जो बिगड़ गया तो बिगड़ गया । धन-सम्पत्ति और भोगों की आसक्ति में सारा जीवन नष्ट हो गया किन्तु अभी एक आशा है । हे नाथ ! हम पतित हो गये, तुम्हें भूल गये । गर्भ से बाहर आकर आपको भूल गये । उसी भोग, मिथ्या मिट्टी 'धन-सम्पत्ति' में फँस गये लेकिन इतना अवश्य है कि हम पतित हैं और तुम पतित-उधारन (पापियों को तारने वाले) हो । यह हमने सन्तों के मुख से सुना है कि आप पतितों का उद्धार करते हैं । आपका नाम 'पतितपावन' है, इसलिए आप अपने नाम की लज्जा रखना और मेरा उद्धार कर देना । अब तो मेरे उद्धार का यही रास्ता है कि आप 'पतित-उद्धारक' हैं, आप अपने नाम की लज्जा रख लेना, बाकी हम तो पतित हो गये, नष्ट हो गये । **'सूर पतित तुम पतित उधारन'** भगवान् पतित-पावन (महापापियों को पवित्र करने वाले) हैं, उन 'पतितपावन' को हर समय याद करो क्योंकि जीवन जा रहा है । **'सूर पतित तुम पतित उधारन, अपने बिरद की लाज धरी ।'** भगवान् ने अपने विरद की लाज रख ली, अपने नाम की लज्जा रख ली, कैसे ? हम लोग इस पवित्र गह्वरवन में, राधारानी की निकुंज में **'राधे ! राधे !!'** करते हैं । यह हम लोगों के पुण्य का फल नहीं है, यह तो उनकी कृपा का फल है । यह मत समझना कि हमारा कोई पुण्य है, नहीं-नहीं, ऐसा सोचोगे तो मारे जाओगे । यह तो राधारानी की कृपा है कि हम लोग गह्वरवन में बैठकर **'राधे ! राधे !!'** करते हैं । भगवान् का नाम पतित पावन है, उन्होंने अपने नाम की लज्जा रखी, हम जैसे पतितों को मौका दिया कि हम लोग **'राधे ! राधे !!'** करते हैं । इस बात को याद रखना कि हम लोग गह्वर वन में बैठकर जो **'राधे ! राधे !!'** करते हैं, यह उनके विरद की लाज है । हम पतितों पर दया हुई है, क्यों हुई है, क्योंकि उनका नाम पतितपावन है । 'सूर पतित तुम पतित उधारन, अपने बिरद की लाज धरी ।' अति वात्सल्य व कृपा के कारण राधारानी रोती हैं । श्रीजी हम लोगों पर कृपा करने के लिए रोया करती हैं, बहुत रोती हैं । राधासुधानिधि में ही इस बात का प्रमाण है कि हम लोगों की दीन दशा देखकर राधारानी रुदन करती रहती हैं; इसी को वात्सल्य कहते हैं । हम उनके वात्सल्य को जान नहीं पाते हैं और यदि जान जाएँ तो हर क्षण उन्हीं की याद करेंगे । बच्चा यदि जान जाए कि

माँ मेरे लिए कितना रोती है तो सदा माँ के प्रति कृतज्ञ बना रहेगा परन्तु बच्चा भूल जाता है । क्या किसी को याद है कि हम लोग अपनी माँ की गोद में मल-मूत्र त्याग करते थे तथा किस तरह माता ने हमारा पालन किया, क्या किसी को याद है ? किसी को याद नहीं है । यदि यह याद रहे तो फिर क्या बात है !! इसी प्रकार हम लोगों ने माता के गर्भ में, जठराग्नि में जो कुछ कष्ट भोगा, उसे भूल गये । प्रभु और श्रीजी एक ही हैं । उनको अलग मत समझना फिर भी श्रीकृष्ण से श्रीजी का वात्सल्य बहुत आगे है । राधारानी का वात्सल्य या कृष्ण का वात्सल्य, एक ही बात है । हम जैसे बहुत से ऐसे मूर्ख लोग होते हैं, जो सम्प्रदाय भेद करते हैं कि यह हमारे सम्प्रदाय के महापुरुष का पद है और यह दूसरे सम्प्रदाय के महापुरुष का पद है । यह तुलसीदासजी का पद है, यह सूरदासजी का पद है, यह मीराजी का पद है । अरे, कृपा तो एक ही है । कृपा में कोई भेद नहीं होता है । हमारे दिमाग में भेद का कीड़ा घुसा हुआ है, यह कीड़ा दिमाग में घुसकर भेद का पाप कराया करता है और इस तरह हम सम्प्रदाय भेद के कारण भगवान् की कृपा रस को नहीं ढूँढ पाते हैं, नहीं देख पाते, नहीं सुन पाते हैं । भगवान् की कृपा का रस नहीं ले पाते हैं । प्रभु की कृपा और श्रीजी की कृपा एक ही बात है । प्रभु तो जो कृपा करते हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता । रसिकों ने लिखा है कि श्रीजी की कृपा का क्या ठिकाना ? श्रीराधासुधानिधि के एक ही श्लोक में ग्रन्थकार ने लिख दिया है कि किशोरीजी करुणा के कारण रोया करती हैं । हमारे जैसे नीच पतितों को देखकर श्रीजी रोती हैं । एक माता रोती है कि मेरा पुत्र विष को क्यों नहीं छोड़ता, क्यों जहर खाता है । राधासुधानिधि में एक श्लोक है – **श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे स्वस्तोत्रस्वकृपात एव सहजो योग्योप्यहं कारितः ।**

पद्येनेव सदापराधिनि महन्मार्गं विरुध्य त्वदे-काशे स्नेहजलाकुलाक्षि किमपि प्रीतिं प्रसादीकुरु ॥ (श्रीराधासुधानिधि – २६९)

जब सारा ग्रन्थ समाप्त होने को आया तब ये भाव निकले । ग्रन्थकार ने कहा कि इस ग्रन्थ में जो मैंने लाड़लीजी का (राधारानी का) यश गाया, वह कैसे गाया ? मैं गाने लायक नहीं था । इस ग्रन्थ के जो गायक हैं, वे कहते हैं कि सच बात तो यह है कि मैं लाड़ली श्रीराधारानी के यश को गाने के लायक नहीं था क्योंकि मैं छोटा-मोटा पापी नहीं हूँ । चोरी, व्यभिचार (परस्त्रीगमन) आदि तो छोटे पाप हैं । इसका मतलब यह नहीं है कि छोटे होने के कारण हमको ये पाप करने चाहिए । छोटे पाप का मतलब यह है कि नाव में छोटा सा भी छेद होता है तो नाव को डुबा देता है लेकिन छेद छोटा होता है तो नाव थोड़ी देर में डूबेगी और यदि किसी नाव का नीचे का पट्टा (पेंदा) ही पूरा उखड़ जाए तो समझो कि डूबना क्या वह तो डूबी-डुबाई ही है । जब नाव का नीचे का पट्टा ही उखड़ गया तो नाव के चारों ओर की जो बाउन्ड्री है, वह लकड़ी है, उससे क्या होगा ? इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द सदपराध का अर्थ होता है महापुरुषों का अपराध । यह अपराध तो ऐसा है कि मानो नाव का पेंदा ही उखड़ गया, फिर बचाव नहीं होता है । चोरी-छिनारी आदि पाप तो छेद हैं, छेद के कारण नाव देर में डूबती है लेकिन सदपराध तो उसी समय डुबा देता है । महापुरुषों के अपराध के कारण तो लाखों जन्मों का नाश हो जाता है । ग्रन्थकार, जिन्होंने सुधानिधि गाया, उन्होंने कहा कि मैं तो उन बड़े पापियों में से हूँ जिसके नाम से नाव का पेंदा ही नष्ट हो गया । मैंने बड़े-बड़े महापुरुषों का अपराध किया । इतना बड़ा अपराधी होते हुए भी मैं राधारानी का यश गा रहा हूँ । यह यश कैसा है ? 'श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे' यह बड़े जोर की बात कही । 'बुध' का अर्थ है 'ब्रह्मा' । प्रलय के बाद जब सबसे पहले सृष्टि बनी तो उस समय ब्रह्माजी कमल पर विराजमान थे । उन्होंने अपने चारों तरफ देखा तो प्रलय का समुद्र था, सभी ओर अन्धकार था । ऐसी-ऐसी लहरें उठ रही थीं कि जिनको देखकर ब्रह्माजी घबरा गये । श्रीमद्भागवत में यह प्रसंग आता है । भागवत के उस सारे प्रसंग को ग्रन्थकार ने इस श्लोक की एक पंक्ति में लिख दिया है । ब्रह्माजी ने सोचा कि अब मैं क्या करूँ ? यह प्रलय का समुद्र तो बड़ा भयंकर है, इसके सामने मेरी तो कुछ भी सामर्थ्य नहीं है । घबराकर उन्होंने भगवान् की याद की । जीव में क्या शक्ति है ? मूर्ख आदमी सोचता है कि मुझमे बड़ी शक्ति है; यही तो गड़बड़ी है । अहंकार के कारण जीव सोचता है कि 'मैं कुछ हूँ'; जीव की यही आदत तो नहीं छूटती है, यदि ये आदत छूट जाए तो भवसागर से बेड़ा पार है ।

पाप कह्यो गोपाल सों मोकूँ ठौर बताओ । जो न करै संकीर्तन वाके मुख में जाओ ॥

वास्तविक तप 'दीनता'

'जीव धर्म अहमिति अभिमाना ।' जीव-धर्म 'अहंकार' छूटता ही नहीं है । मर जाता है, चिता पर फुँक जाता है तो 'अहं' को लेकर मरता है । अगले जन्म में कुत्ता बनता है तो सोचता है कि मैं कुत्ता हूँ । 'अहं' वहाँ भी आ जाता है । कुत्ता किसी दूसरे कुत्ते को देखता है तो भौंकने लगता है कि मेरे दरवाजे पर तू कैसे आ गया ? एक चींटे को भी हटाओ तो उसी स्थान पर लौटकर आएगा । वह 'अहं' को नहीं छोड़ता है । किसी के शरीर को पकड़ लेता है, हटाने पर खून निकाल लेता है, उसको खींचो तो चींटा टूट जाता है किन्तु छोड़ता नहीं है । अपने 'अहं' को छोड़ नहीं पाता है । मर जाता है, 'अहं' नहीं छोड़ता है । ऐसे ही लोग थोड़ी देर में मर जाते हैं । जरा से 'अहं' के कारण थोड़ी ही देर में मर जाते हैं । जैसे चींटा, सर्प और बिच्छू आदि जीव हैं, वैसे ही हम भी हैं । अन्तर कुछ नहीं है, केवल शरीर का अन्तर होता है । उनका शरीर दूसरे प्रकार का है, हमारा शरीर थोड़ा भिन्न है लेकिन भीतर का अहं एक जैसा ही है । अस्तु, जब ब्रह्माजी ने भगवान् को याद किया तो जल के भीतर से आवाज आई – 'तप' अर्थात् तप करो ।

तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया । विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद् वायुं सहाम्भसा ॥ (श्रीभागवतजी ३/१०/६)

ब्रह्माजी ने तप किया । 'ह्येधमान तप' का अर्थ है जो सदा बढ़ता जाए । ऐसा नहीं कि जब लोग अपने घर से निकलते हैं, तब बड़ी दीनता रहती है किन्तु कुछ दिनों के बाद वह नष्ट हो जाती है, आपस में लड़ाई-झगड़ा होने लगता है । जब कोई साधक ब्रज में नया-नया आता है तो ब्रजवासियों से दीनतापूर्वक बोलता है – हे ब्रजवासी ! हे ब्रजमाई !! आदि कहता है । लेकिन कुछ समय बाद उसके अंदर अभिमान उत्पन्न हो जाता है तो ब्रजवासियों के लिए अपशब्द कहने लग जाता है कि ये साला दूध नहीं देता है, ये साली रोटी नहीं देती है । यह ब्रजवासी बड़ा बदमाश है । सब दीनता चार दिन में ही गायब हो जाती है । इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'ह्येधमान' का अर्थ है ऐसा तप जो बढ़ता जाए, घटने वाला तप नहीं । हम लोगों के साथ तो घटने वाला काम होता है । कोई ब्रजवासी कुछ कटु शब्द कह देता है तो दो दिन में ही हमें बुरा लगने लगता है और सारी दीनता समाप्त हो जाती है । ह्येधमान का अर्थ है ऐसा तप जो बढ़ता जाए । हम लोगों के साथ तो मामला घटने वाला हो जाता है । भजन उसको कहते हैं जो सदा बढ़ता जाए । एक कहावत है कि नया मुल्ला बड़ी जोर से बांग देता है । मुसलमान का नया लड़का जब नमाज पढ़ने जाता है तो बड़ी जोर से चिल्लाता है । इसी प्रकार मान मन्दिर में ही मेरे सामने हजारों लोग आये । कुछ लोग तो ऐसा नाचते थे कि लगता था कि धरती हिला देंगे, बड़ी ही दीनता दिखाते थे । कुछ समय बाद उनकी सब दीनता नष्ट हो गयी और सिद्ध के बाप बन गये । ऐसा नहीं होना चाहिए । केवल तप ही नहीं बल्कि 'विद्यया चात्मसंस्थया' अर्थात् उपासना, भक्ति । तप में यदि भक्ति नहीं है तो वह बेकार है । उपासना के साथ जो तप किया गया, उससे ब्रह्माजी में ज्ञान की शक्ति आई और वह अपना मुँह फाड़कर सारे प्रलय का जल पी गये, आँधी पी गये, अन्धकार पी गये । ब्रह्माजी के इस भजन से भगवान् प्रसन्न हो गये । उपनिषदों में लिखा है कि जिन भगवान् ने सबसे पहले ब्रह्मा को बनाया और कृपा करके उनको वेद अर्थात् ज्ञान भी प्रदान किया । 'वेद' का अर्थ होता है ज्ञान । 'विद्' धातु से वेद शब्द बना है । 'विद्' का अर्थ होता है जानना । इसलिए वेद का अर्थ हुआ सनातन ज्ञान । उन देवताओं की भी बुद्धि में प्रकाश देने वाले भगवान् की हम शरण में जाते हैं अर्थात् शरणागति । शरणागति उसको कहते हैं, जिसमें दीनता बढती जाती है । ऐसा नहीं जैसे कि हम लोग दो दिन में ही सिद्ध बन जाते हैं । प्रारम्भ में आने पर जो दीनता रहती है, वह बाद में कभी नहीं रहती है । जब विवाह के बाद नयी दुल्हिन आती है तो कितनी दीनता के साथ सारा व्यवहार करती है । ऐसे बोलती है कि जैसे शहद और मिसरी घोलकर के धीरे-धीरे बोल रही है और फिर दो-चार साल बाद चाऊँ-चाऊँ करने लगती है । आगे चलकर सास की भी सास बन जाती है, ताई की भी ताई बन जाती है, ननद की भी ताई बन जाती है । प्रारम्भ वाला मामला बदल जाता है, वही हाल हम जैसे पाखण्डी साधुओं का भी होता है; ऐसा नहीं होना चाहिये । 'प्रपद्ये' का अर्थ है कि शरणागति और दीनता भाव बढ़ता जाए । 'ह्येधमान' का अर्थ है घटे नहीं, निरन्तर बढ़ता रहे; लेकिन हम लोगों के साथ मामला घट जाता है । इसलिए हम लोगों को सावधान रहना

चाहिए । अस्तु, ब्रह्माजी ने प्रलय के जल को पी लिया, इसके बाद भगवान् ने उनको ज्ञान दिया । श्रीराधासुधानिधि के उसी श्लोक - २६९ पर पुनः वापस आते हैं – 'श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे' – एक कड़ी में ही ग्रन्थकार ने इसी बात को कहा है कि हे राधे ! हे किशोरी जी !! 'बुधै' माने ब्रह्मा आदि श्रुतियों के द्वारा भगवान् को तो ढूँढते ही हैं किन्तु राधारानी को दिन-रात ढूँढते हैं, फिर भी आज तक कुछ नहीं पा सके । 'बुधैर्भगवताप्यामृग्य' – ब्रह्माजी की तो क्या कहें, जिन राधारानी को भगवान् भी दिन-रात ढूँढ़ा करते हैं । 'भगवतापि' – भगवान् भी, 'मृग्य' माने ढूँढना, 'आ' माने अच्छी तरह ढूँढते हैं । श्यामसुन्दर इस गह्वरवन में राधारानी को ढूँढ़ा करते हैं । **'देखी कहूँ गलीन में मो प्राण जीवनी ।'** श्यामसुन्दर गह्वरवन में पूछते हैं – क्या किसी ने यहाँ राधारानी को देखा है ? कोई मुझे बता दे, कौन गली से गयी हैं राधे ? **'ए हो सुजान प्यारी ! मम चूक कहा बिचारी'** श्यामसुन्दर रो रहे हैं । ऐसा रोते हैं कि पाषाण (पत्थर) भी पिघल जाते हैं । राधारानी को ढूँढ रहे हैं । 'भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे' – राधासुधानिधि की इस पंक्ति का यह अर्थ है । 'ए हो सुजान प्यारी' **'क्यों दुर गयी लतन में, दे दरस अनन्दिनी ।'** श्यामसुन्दर याद कर रहे हैं कि जब राधारानी चलती हैं तो उनके नूपुर बजते हैं । वह झनक अब नहीं सुनायी पड़ रही है । कहाँ हैं राधारानी ? उनके नूपुरों की झनकार कहाँ है ? **'जब चलति चाल छबि सों'** जब श्रीजी चलती हैं तो उनके वक्षःस्थल पर मोतियों की माला हिला करती है ।

'तब हलति हार उस सों' ठुम ठुम चरण धरन पे तू गति गयन्दिनी । श्यामसुन्दर राधारानी के चरणों को याद करते हैं कि उनके चरण ऐसे हैं, जिनके सामने सूर्य भी कुछ नहीं है । श्रीजी के चरणों की चमक, उनकी कान्ति – **तेरी छटा चरण की, निन्दित किरण रवि की । हा हा कुँवर किशोरी, तू सुख समूहनी ।** श्यामसुन्दर कहते हैं कि मेरी आवाज सुनकर, मेरे करुण विलाप, मेरे क्रन्दन (रोने) को सुनकर पत्थर भी पिघल रहे हैं ।

ये वचन सुनत मेरो, पाषाण द्रवत हेरो । हित रूप लाल चेरो, तू दुःख निकन्दनी ॥

इसीलिए राधासुधानिधिकार लिखते हैं – भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे – राधारानी के स्वगति वैभव को भगवान् भी ढूँढ़ा करते हैं । 'बुध' अर्थात् ब्रह्मादि भी वेदों में ढूँढ़ते हैं । 'श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे, स्वस्तोत्रस्वकृपात एव सहजो योग्योप्यहं कारितः ।' उनकी कृपा थी, जो मुझ जैसे महान अपराधी ने राधारानी का यश गाया । केवल उनकी कृपा थी और कुछ नहीं है । 'पद्येनैव सदापराधिनी महन्मार्गं विरुध्य त्वदे' मैं महान अपराधी हूँ । मैंने बड़े-बड़े महापुरुषों के मार्ग का विरोध किया । क्या विरोध किया ? द्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि बड़े-बड़े आचार्यों के अनेक सिद्धान्तों को छोड़कर केवल राधा नाम की ही मैंने रट लगायी । जन्त्र-मन्त्र-तन्त्र आदि मैंने सब छोड़ दिए ।'काशे स्नेहजलाकुलाक्षि किमपि प्रीतिं प्रसादीकुरु ॥' हे राधे ! मैं केवल आपकी ही आशा करता हूँ, क्यों ? 'स्नेहजलाकुलाक्षि' – कृपा के कारण राधारानी के नेत्रों में सदा आँसू भरे रहते हैं । ये किशोरीजी का वात्सल्य है कि सदा उनकी आँखों में आँसू रहते हैं कि यह जीव मेरी शरण में क्यों नहीं आता है ? कहाँ भटकता है ? श्यामसुन्दर की करुणा से ग्रन्थकार ने बहुत आगे की बात बता दी कि किशोरीजी रोया करती हैं, स्नेह के जल से जिनके नेत्र सदा भीगे रहते हैं । ऐसा कई ग्रन्थों में कहा गया है । इसीलिए राधारानी को वात्सल्यसिन्धु कहा गया है, जो करुणा से रोती हैं । यहाँ तक कि सुधानिधि में ही उनके बारे में कहा गया है – 'कारुण्यद्रवभाविनी' – करुणा से पिघल जाती हैं, उनका सारा विग्रह ही करुणा से पिघल जाता है, ऐसी वे करुणामयी हैं, ऐसी वात्सल्यमयी हैं, ऐसी दयामयी हैं । 'कृपार्द्रदृष्टे' – कृपा से भीगी हुई दृष्टि वाली हैं । उनकी करुणा और कृपा को हम जैसे मूढ़ क्या समझ सकते हैं, समझ ही नहीं सकते हैं । 'स्नेहजलाकुलाक्षि' – स्नेह और दया के जल से आपके नेत्र सदा भरे रहते हैं । राधारानी के नेत्र करुणा के आँसुओं से सदा भरे रहते हैं । 'किमपि प्रीतिं प्रसादीकुरु' – इसलिए हमें आशा है कि आप अपने प्रेम का पात्र हमको अवश्य ही बनायेंगी क्योंकि जो परम करुणामयी हैं, वह केवल करुणा ही करुणा करती हैं । जिनके नेत्र सदा आँसुओं से भरे रहते हैं, वे अवश्य हमको अपने प्रेम का पात्र बना देंगी । इसीलिए राधारानी के बारे में कहा गया है कि वे वात्सल्य की सिन्धु हैं ।

कागा सब तन खाइयो चुन चुन खइयो मांस । दो नैना मत खाइयो मोहे श्याम मिलन की आस ॥

विशुद्ध भक्ति 'भावोदय'

इस मन को एक क्षण के लिए भी खाली मत छोड़ो, खाली छोड़ोगे तो मन खा जायेगा । यह मन शत्रु है, जिसको हम अपना मित्र माने बैठे हुए हैं । भगवान् ने गीता में कहा – **'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।'**

मन ही शत्रु है और मन ही मित्र है । बन्दूक में गोली है, यदि उसका मुख अपनी ओर किया और निशाना लगाया तो बन्दूक हमें ही मार डालेगी । जिधर उसका मुँह है, उसी को मार देगी; इसी तरह यह मन है । मन में हम ही संसार के राग-द्वेष की गोली भर लेते हैं तो यह मन हमको मार डालता है, छोड़ता नहीं है । मन की गोली किसी को नहीं छोड़ती, स्वयं को ही मारती है । इसीलिए भागवत के दशम स्कन्ध में कहा गया है – **'पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्'** – जिसका मन भगवान् में नहीं लगता, जो भगवान् की कथा नहीं सुनता, भगवन्नाम कीर्तन जहाँ हो रहा हो, वहाँ नहीं बैठता, वह आत्महत्यारा है चाहे कितना भी पढ़ा-लिखा है, बड़ा-बूढ़ा है, पैसा वाला है, राजा है, गरीब है, भिखारी है; ये सभी आत्महत्यारे हैं । वसिष्ठजी ने रामायण में कहा है कि चाहे कोई घोर विषयी है, पापी है या साधक है, संसार से हटना चाहता है अथवा सिद्ध है । संसार में तीन प्रकार के लोग हैं – एक तो वे हैं, जिनको पता ही नहीं कि भगवान् क्या हैं ? उनको इससे कोई मतलब नहीं कि हम मरकर कहाँ जायेंगे ? जैसे कुत्ते-बिल्ली कभी नहीं सोचते कि आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है ? हमारी आगे क्या गति होगी ? इसी प्रकार संसार में अधिकतर हमारे जैसे लोग हैं, जो केवल खाते-पीते हैं, मल-मूत्र त्याग करते हैं; जिनको भगवान् से कोई मतलब ही नहीं है, जो यह नहीं सोचते कि हमारी आत्मा की क्या गति होगी । पशु में और हम जैसे लोगों में कोई अन्तर नहीं है; ऐसे लोगों को विषयी कहा गया है । करोड़ों में कोई-कोई होते हैं, जो साधक होते हैं, जो साधना करते हैं और संसार से छूटना चाहते हैं; ये दूसरे (साधक) कोटि में आते हैं । तीसरे होते हैं सिद्ध कोटि के, जिनका मन भगवान् में लग गया और अब वहाँ से हटेगा नहीं । चाहे संसार कितना भी उनको भगवान् से हटाने का प्रयास कर ले । ऐसे लोगों को 'सिद्ध' कहते हैं । ये तीन प्रकार के जीव (विषयी, साधक, सिद्ध) होते हैं । इसीलिए गोस्वामीजी ने रामायण में कहा है –

विषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग वेद बखाने ॥ (श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २७७)

अब बहुत से लोग सोचते हैं कि सिद्ध बड़ा है । बहुत से लोग सोचते हैं कि साधक बड़ा है किन्तु चाहे सिद्ध का बाप भी है, यदि वह भगवान् के प्रेम को नहीं जानता है तो कोई भी बड़ा तपस्वी, योगी है; वह बेकार है क्योंकि अपने साधन से कोई भवसागर के पार नहीं जा सकता है । प्रभु ही जीव को भवसागर के पार लगाते हैं । समुद्र में कोई कैसे तैर सकता है ? यदि कोई विषयी भी है किन्तु नित्य भगवान् का स्मरण करता है, भगवान् की कृपा को मानता है, भगवान् के प्रेम में उसका मन है तो वह साधक और सिद्धों से बड़ा हो जाएगा । ब्रजवासी सब गृहस्थ थे, साधु नहीं थे किन्तु उनकी चरणरज ब्रह्मा-शंकर भी माँगते थे । गोपियाँ भी गृहस्थ थीं । अतः बड़ा वही है, जिसका मन भगवान् के प्रेम से सरस है । सच्चे सन्त उसी का आदर करते हैं । तीन प्रकार के जीवों में बड़ा कौन है ? यदि कोई विषयी भी है लेकिन भगवान् के प्रेम के मार्ग पर चल रहा है तो वह साधक और सिद्धों से बड़ा है । यह एक बड़ी ही विचित्र बात है ।

राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभाँ बड़ आदर तासू ॥ (श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २७७)

योग, वैराग्य और तपस्या आदि से कुछ नहीं मिलता है । जिसका राधारानी और कृष्ण में प्रेम है, सन्त लोग उसी का आदर करते हैं । नहीं तो बड़े-बड़े ज्ञानी होते हैं, बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें करते हैं जबकि उनके मन में बड़ा ही अहंकार होता है कि हम तो बहुत बड़े ज्ञानी हैं । जबकि देखा जाए तो हमें क्या ज्ञान हो सकता है, हम क्या जान सकते हैं, अभी एक घड़ी के बाद क्या होगा, इसका हमें पता नहीं है । कोई बहुत बड़ा ज्ञानी बनता है, कहो तो थोड़ी दूर आगे चले और उसकी श्वास चली जाए, मृत्यु हो जाए । जानना तो वास्तव में वही जानना है, जो प्रभु की ही सत्ता को मानता है । जो प्रभु के वात्सल्य को नहीं जान पाया, उसका सारा योग, तप और ज्ञान बेकार है । 'अहं' के कारण ही मनुष्य अपने अन्तःकरण को नहीं देख पाता है । वह सदा दूसरे की ओर देखता रहता है । एक दिन एक व्यक्ति मेरे पास आकर अन्य

स्थानों की चर्चा करने लगे कि वहाँ इतना राग है, इतना द्वेष है । मैंने उनसे कहा कि ये सब छोड़ो । दूसरे की ओर देखना तो अपनी आँख फोड़ना है । हम क्या करेंगे दूसरों की बातों को सुनकर, अपने अन्दर ही अनन्त दोष भरे पड़े हैं, जो दिखाई नहीं देते हैं । किसी की निन्दा इत्यादि बातें अब अच्छी नहीं लगती हैं । अब इससे मन घबराता है क्योंकि दूसरों के दोष देखने वाला कभी भगवान् को नहीं प्राप्त कर सकता है । नारायण स्वामीजी ने कहा है – **'तेरे भावे होय जो भलो बुरो संसार, नारायण तू बैठकर अपनी डगर बुहार ।'** दूसरा कोई चोर है, बदमाश है, हमें इससे क्या मतलब ? ये सब बातें भगवान् से अलग कर देती हैं । सारा संसार ही ऐसा है जो गुण-दोषों से भरा हुआ है । भगवान् का प्रेम पाने के लिए तो व्यर्थ बातों की चर्चा छोड़नी ही पड़ती हैं । भगवान् के भक्त को भगवान् के अतिरिक्त दूसरी बातों को सोचने का समय ही कहाँ है ? भक्त तो सदा भगवान् के गुणों को ही सोचता रहता है, उनकी दया, उनकी कृपा के बारे में सोचता रहता है । जीव माता के गर्भ में पड़ा हुआ बहुत कष्ट भोगता है । भगवान् उसे गर्भ के बाहर तब निकालते हैं, जब वह उनसे प्रार्थना करता है । गर्भ के अंधकूप में जीव को घुटते हुए कितना अधिक कष्ट होता है, उसको हम लोग भूल गये हैं । मुश्किल तो यही है कि हर बात को हम लोग भूल जाते हैं । यदि गर्भ का कष्ट याद रहे तो मनुष्य कभी भी संसार की ओर नहीं जाएगा लेकिन हम लोगों की बुद्धि ऐसी है कि हर बात भूल जाती है । जीव गर्भ में जठराग्नि के पास मल-मूत्र के गड्ढे में उल्टा लटका रहता है, उसका मुख नीचे की ओर होता है । कितना असहनीय कष्ट होता है, उसको हम लोग भूल गये हैं । 'पावक जठर जरन नहिं दीन्हों ।' जठराग्नि के पास जीव को नौ महीने तक रहना पड़ता है । 'जनमत मरत दुसह दुःख होई ।' जन्म-मृत्यु के समय असहनीय कष्ट होता है ।

किसी व्यक्ति ने हमें बताया कि देशी शराब पीने वाले अधिकतर लोग मर क्यों जाते हैं तो उसका कारण बताया कि भट्टी के ऊपर जीवित बिच्छू या छिपकली टाँग देते हैं और भाप से उनका जहर नीचे टपकता है, तब वह शराब बड़ी नशीली बन जाती है । ज्यादा जहर आ जाता है तो उस शराब को पीकर लोग मर जाते हैं । जिन जीवों को ऊपर टाँगा जाता है, भाप के कारण उनका जहर धीरे-धीरे कई घण्टों में टपकता है तो उनको कितना कष्ट होता होगा । उससे भी अधिक कष्ट होता है जब हम लोग गर्भ में थे किन्तु अब उस कष्ट को भूल चुके हैं । इसीलिए महापुरुषों ने कहा है कि उस कृपा को कौन याद करता है, जब गर्भ के भीतर भगवान् ने हमारी रक्षा की थी । गर्भ के भीतर जीव भगवान् की स्तुति करते हुए कहता है – **स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनाञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥** (श्रीभागवतजी ३/३१/१८)

हे नाथ ! मैं आपका ऋण कभी नहीं चुका सकता हूँ । हे दीनबन्धु ! आप जो मुझे बचा रहे हैं । अपने इस परोपकार से आप स्वयं ही प्रसन्न हो जाइए । आपको हाथ जोड़ने के अतिरिक्त मैं और क्या कर सकता हूँ ?

इसी बात को महापुरुष लोग अपने पदों के माध्यम से जीव को याद दिलाते हैं कि हे प्राणी ! तू उस बात को क्यों याद नहीं करता है ? अब फिर तेरी वही गति होने वाली है । भगवान् की कृपा को समझ । अरे मूर्ख ! भगवान् के वात्सल्य को समझ । यह मूर्ख जीव समझता नहीं है । अन्धे ! तू उसको भूल गया, जब तूने गर्भ में भगवान् से कहा था कि अब मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं आपका ऋण कुछ भी नहीं चुका सकता हूँ । मैं मन से ही यही सोच सकता हूँ कि आपको हाथ जोड़ूँ । गर्भ के भीतर जठराग्नि के पास मैं पड़ा हुआ हूँ, जो प्रभु मुझे इस अग्नि से बचा रहा है, उसको हाथ जोड़ने के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ । 'तुम प्रभु मो सों बहुत करी ।' अरे मूढ़ प्राणी ! उस वात्सल्यमयी जननी की कृपा को समझ । उनकी एक कृपा तो यही है कि उन्होंने मुझे गधा, कुत्ता, बिल्ली या सर्प-बिच्छू नहीं बनाया, मनुष्य शरीर दिया । 'नर देही दीन्ही सुमिरन को' हे दयालु ! हे दयामय !! तेरी कृपा का वर्णन कौन कर सकता है, जो तूने मुझे मनुष्य बनाया । 'मो पापी सों कछु न सरी' हमें समझना चाहिए कि हम कृतघ्न हैं । अपने आँख, नाक, कान आदि अंगों को भगवान् की सेवा में लगाना था लेकिन मैंने बड़ा पाप किया । इन आँखों से संसार देखता हूँ, अपनी इन्द्रियों को भगवान् की ओर न लगाकर संसार के विषयों की ओर लगाता हूँ, इसलिए मैं बड़ा ही पापी हूँ । हे नाथ ! मुझ पतित का आप ही उद्धार कीजिये ।

निर्मल मन की पहिचान 'अहंशून्यता'

पुराणों में एक बड़ी ही विचित्र कथा है । एक ऋषि थे, उन्होंने लाखों वर्षों तक तपस्या की किन्तु उन्हें भगवान् का दर्शन नहीं हो सका । एक दिन वे सुबह स्नान करके तपस्या करने के लिए बैठे तो देखा कि एक बड़ी ही सुन्दर अप्सरा उनके पास आयी । उसका ऐसा रूप, ऐसा हाव-भाव था कि उसको देखकर ऋषि मोहित हो गये । काल की गति है, उस अप्सरा के साथ ऋषि का सम्पर्क हुआ । अप्सरा के मोहपाश में वे ऐसा बँधे कि अपना सारा भजन-साधन भूल गये । प्रतिदिन उसके साथ समागम करने लगे । तपस्या के कारण ऋषि में बड़ी शक्ति थी । 'तपस्या की शक्ति' शरीर की शक्ति से हजारों गुना बड़ी होती है । जो काम हम लोग पैसे से, ताकत से नहीं कर पाते हैं, तपस्वी लोग उसी काम को तपस्या की शक्ति से सहज में ही कर लेते हैं । ऋषि को उस अप्सरा के साथ विहार करते-करते बहुत अधिक वर्ष बीत गये । दिन-रात, जाड़ा-गर्मी, सुबह-शाम बीत जाते, ऋषि को भोगावेश के कारण कुछ पता नहीं पड़ता । जब भोग भोगते-भोगते ऋषि की सारी तपस्या नष्ट हो गयी; तब एक दिन उनको दिखाई पड़ा कि संध्या हो रही है, नहीं तो वे विषयों में ऐसा डूबे थे कि उन्हें दिन-रात का ही पता नहीं लगता था । विषय ऐसी ही चीज है । विषयासक्ति में जीव अन्धे से अधिक अंधा हो जाता है । पहले जब हम मानमन्दिर में अकेले ही रहते थे तो यहाँ बहुत सर्प रहा करते थे । एक दिन हम जा रहे थे तो मानगढ़ की सीढ़ी पर हमारे कन्धे तक ऊँची कोई रस्सी-सी आकृति दिखाई दी । ध्यान से देखा तो पता चला कि नाग-नागिन लिपट रहे थे और हम पास पहुँच गये किन्तु उनको दिखाई नहीं पड़ा । विषयासक्ति में जीव इतना अंधा हो जाता है । हम तो अचानक उन्हें देखकर चौंक गये, रोंगटे खड़े हो गये और धीरे से हम वहाँ से चले गये । कुछ दूर ऊपर जाकर हम बैठ गये तो देखा कि उन नाग-नागिन को कुछ पता नहीं था कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है । हमने सोचा कि देखो, ये कितने अन्धे हो गये हैं । 'विषयों का भोग' जीव को कितना अंधा कर देता है ? इसी प्रकार उन ऋषि को भी कुछ पता नहीं पड़ा । भोग भोगते हुए अनेकों वर्ष बीत गये । जब उनकी तपस्या नष्ट हो गयी तो एक दिन उन्हें कुछ होश हुआ और अप्सरा से बोले – 'देवि ! संध्या हो गयी, सबेरे से मैं तुम्हारे पास बैठा रहा । दोपहर का समय भी चला गया । अब मैं संध्या वन्दन करूँगा ।' अप्सरा ने कहा - 'महाराज ! संध्या कोई आज ही तो हुई नहीं है । न जाने कितने वर्ष बीत गये ।' आश्चर्यचकित होकर ऋषि ने कहा – 'अरे ! इतने अधिक वर्ष बीत गये !' अप्सरा ने कहा – 'ऋतुएँ बदल गयीं, जाड़ा-गर्मी बदल गये, बहुत से दिन-रात बीत गये ।' ऐसा कहकर वह अप्सरा चली गयी । अब तो ये ऋषि अपने पतन को देखकर बुरी तरह रोने लगे और कहने लगे कि जब मैंने लाखों वर्षों तक तपस्या की, फिर भी भगवान् नहीं मिले तो अब क्या मिलेंगे ? अब तो मुझसे इतनी तपस्या भी नहीं हो सकती है । ऋषि का दिल टूट गया । जैसे किसी ने बड़ी कठिनाई से धन कमाया हो और एक दिन अचानक डाका पड़ जाए, उसका सारा धन डाकू लूट लें तो उसको कितना धक्का लगता है, उसके हृदय को कितना कष्ट होता है, यह तो जिसके साथ घटित होता है, वही जानता है । उसी प्रकार ये ऋषि अपनी लाखों वर्षों की तपस्या रूपी धनराशि के लुट जाने पर बुरी तरह रोने लगे और कहने लगे – 'हे प्रभो ! हे दीनबन्धु !! हे दीनानाथ !!! अब तो मेरी मृत्यु हो जाए तो अच्छा है ।' सात दिन-सात रात तक ऋषि लगातार रोते रहे । उन्होंने विचार किया कि अब तो मुझे प्राण त्याग कर देना चाहिए, अब तो प्रभु मुझे कभी मिल ही नहीं सकते । जब मैं शुद्ध था, तब प्रभु नहीं मिले । अब तो मैं अशुद्ध हो गया हूँ, भगवान् के मिलने की अब कोई आशा ही नहीं रही; इस प्रकार से रोते-रोते ऋषि मूर्च्छित हो गये । जब मूर्च्छित हो गये तो उनको प्रतीत हुआ कि कोई उनके सिर पर हाथ फेर रहा है । उन्हें बहुत ही शीतल-सुखद स्पर्श का अनुभव हुआ । इससे उनकी सारी थकावट दूर हो गयी, बड़ा आनन्द मिला । उन्होंने आँख खोलकर देखा कि भगवान् उनके सिर को अपनी गोद में रखकर सहला रहे हैं । ऋषि उठे और भगवान् के चरणों को पकड़ा तथा फिर से रोने लगे । भगवान् ने पूछा कि तुम रोते क्यों हो ? ऋषि ने कहा – प्रभो ! मैं रोता इसलिए हूँ कि मेरा लाखों वर्षों का जो तप था, एक अप्सरा ने आकर उस तप को नष्ट कर दिया । मेरा अन्तःकरण जो पहले शुद्ध था, मैं विषय-भोग के बारे में कभी सोचता भी नहीं था क्योंकि ये सब मल-मूत्र का ही भोग है और लाखों

वर्षों तक तप करने के बाद भी मैंने उसी तुच्छ भोग को दिन-रात अन्धे की तरह भोगा । अब तो मेरा अन्तःकरण बहुत अधिक गन्दा हो गया है लेकिन मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ कि जब मैं शुद्ध था, लाखों वर्षों तक तप किया, तब आप मेरे पास नहीं आये और अब तो मैं इतने वर्षों तक विषयों में डूबा रहा कि दिन-रात का पता नहीं चला, सर्दी-गर्मी का पता नहीं चला । ऐसी दयनीय स्थिति के बाद आप मेरे पास आये । यह मेरी समझ में नहीं आया कि यह आपकी कैसी रीति है ? भगवान् मुस्कुराने लगे और बोले कि तुमको शुद्ध करने के लिए ही मेरी माया से यह नाटक रचा गया । जीव का सबसे बड़ा शत्रु होता है 'अहंकार' । तुम जो सोचते थे कि मैंने इतने लाख वर्ष तक तप किया, यही तो 'अहं' है ।

भगवान् ने गीता में कहा है – **सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।**
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ (श्रीगीताजी १८/४८)

संसार के हर कर्म में कोई न कोई दोष छिपा रहता है । आप नाम-जप करते हैं तो उसमें भी दोष छिपा रहता है, वह है नामापराध । 'नामापराध' से नहीं बचोगे तो नाम का वास्तविक फल नहीं मिलेगा । श्रीविग्रह की सेवा करते हो तो उसमें भी 'सेवापराध' से बचना होगा । भक्तों के पास जाते हो तो भक्तापराध से बचना पड़ेगा । सेवा-पूजा करते हो तो सेवा में ३२ अपराध होते हैं । उनसे बचना पड़ेगा । दान करने चले, कोई सत्कर्म किया तो उसके भीतर भी 'मैं कर रहा हूँ' – यह 'अहं' छिपा रहता है; ये सब दोष हैं । इसीलिए भगवान् ने कहा कि ऐसा कोई कर्म ही नहीं है, जिसमें दोष न हो । उस दोष से बचकर चलने पर वह कर्म सिद्ध होता है । इसलिए भगवान् ने उन ऋषि से कहा कि तुम अब शुद्ध हुए हो । तुम्हारे अन्दर तपस्या का जो 'अहं' था कि मैंने इतने वर्षों तक तप किया, वह अब गल गया, धुल गया । यह उदाहरण इसलिए दिया कि जब भगवान् के चरणों में रति नहीं है तो कोई भी साधन है, उसको करने से 'अहं' उत्पन्न होता है तो वह साधन शून्य कर देता है ।

विलक्षण ब्रजभावुक संत

श्रीबाबामहाराज से सम्बन्धित 'श्रीरमेशगोस्वामीजी, सेवायत – श्रीनन्दबाबा मन्दिर, नन्दगाँव' द्वारा कथित भावोद्गार

२० मई, १९८८ से गर्मियों के मौसम में श्रीबाबामहाराज की ब्रजयात्रा प्रारम्भ हुई थी । पण्डितजी किसी स्कूल में अध्यापक थे और मैं एक स्कूल में प्रधानाचार्य था । ब्रज के सभी स्कूलों में २० मई से गर्मियों की छुट्टी हो जाती हैं । उस समय स्कूल खाली रहते हैं । उन दिनों ब्रजयात्रा के लिए मानमन्दिर में तम्बू-तनात का प्रबन्ध नहीं था । एक दिन पहले मैं, पण्डितजी (श्रीरामजीलाल शास्त्री) और राधाकान्तजी साइकिलों से स्कूलों में जाते थे और यात्रा के रुकने की व्यवस्था के बारे में वहाँ के व्यवस्थापकों से बात किया करते थे और फिर स्कूलों में ही यात्रियों के रुकने का प्रबन्ध हो जाता था । सन् १९८८ की पहली यात्रा में ब्रजवासी तो कम थे, खण्डार के नित्यानन्द महाराज के भक्त ही अधिक थे । नित्यानन्दजी पूरी ब्रजयात्रा की रसोई की व्यवस्था सँभालते थे । खण्डार के ही भक्त यात्रा में कीर्तन भी करते थे । पहली यात्रा में लगभग २५० यात्री थे । दूसरी यात्रा सन् १९९१ में चली, उसमें लगभग ३५० यात्री थे । इस यात्रा में ब्रजवासी अधिक थे, ब्रज के सभी गाँवों के ब्रजवासी बाबा से प्रेम करते थे क्योंकि उनका तो व्यक्तित्व ही विशेष था । ब्रजयात्रा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जो भी यात्रा करता, उसके लिए कीर्तन करना अनिवार्य था, साथ ही कोई व्यर्थ की बातें न करे; इसके अनेकों चमत्कार भी हुए । एक बार यमुना पार के गाँव गिड़ाया में ब्रज के सैनवे गाँव की वृद्ध महिला बेहोश हो गयी और फिर उसकी मृत्यु हो गयी । बाबामहाराज थोड़ा आगे निकल गये थे । लोगों ने उनको जाकर बताया कि एक वृद्ध महिला की मृत्यु हो गयी

है, जल्दी आइये । बाबाश्री आये और उन्होंने कहा कि सभी लोग ठाकुरजी का कीर्तन करो । श्रीबाबा की प्रेरणा से सभी ने बड़े भाव के साथ कीर्तन किया, कीर्तन का ऐसा चमत्कार हुआ कि उस वृद्धा के प्राण पुनः आ गये और वह जीवित हो गई । यह गिड़ाया (गांगरौल) गाँव की घटना है, जो गर्गाचार्यजी का गाँव है । पहली यात्रा में कोई व्यवस्था नहीं थी, केवल दो बोरी सत्तू था किन्तु सम्पूर्ण यात्रा बड़े ही आनन्द के साथ सम्पन्न हुई । सभी गाँवों में ब्रजवासियों ने ही समस्त यात्रियों के भोजन की व्यवस्था की थी । सन् १९९१ के बाद सन् १९९४ में यात्रा हुई और उसके बाद सन् १९९६ में यात्रा हुई । सन् १९९६ से प्रतिवर्ष क्वार-कार्तिक के महीने में ब्रजयात्रा होने लगी है । अब तो टेंट की भी व्यवस्था होने लगी थी और चार-पाँच लोगों के लिए तो अलग से रावटी की भी व्यवस्था होने लगी । पहले तो केवल एक ही बड़ा टेन्ट होता था, उसी में सभी यात्री सामूहिक रूप से रहते थे । कुछ लोग ऐसे थे, जो देखते थे कि बाबा महाराज क्या खा रहे हैं, उनको ऐसा लगता था कि बाबा अपने लिए तो बढ़िया माल खाते होंगे । जबकि बाबा महाराज तो सबके साथ ही सामूहिक पाण्डाल में रहते थे, उनके चारों ओर ब्रजवासी सोते रहते थे तथा वे जो कुछ भी खाते थे, वह सबके बीच में ही खाते थे, ऐसा नहीं कि कुछ छिपाकर अपने लिए विशेष वस्तु खाते हों । बाबा तो ब्रजवासियों के ही टुकड़ों पर पले हैं, उन्हीं के दिए टुकड़े वे खाते हैं और ब्रजवासियों को ही मानते हैं ।

मैं सन् १९६४ में आठवीं कक्षा में उत्तीर्ण हुआ था । जुलाई में मैंने बरसाने के राधाबिहारी इन्टर कॉलेज में प्रवेश लिया था । श्रीबाबा के गुरुदेव श्रीप्रियाशरण बाबा महाराज नन्दगाँव में नन्दभवन की समाज में आया करते थे, बाबा महाराज भी आया करते थे । उस समय नन्दभवन में सबसे पहले यह पद गाया जाता था – **'जुर चलिए बधावल नन्द महर घर ब्रज की बाला ।'** यह नन्ददासजी का पद है । समाज में बाबा मृदंग बजाया करते थे । होरी के उत्सव पर भी बाबा नन्दगाँव में आया करते थे । ऐसा कोई उत्सव नहीं था, जिसमें बाबा भाग न लेते हों । वे ब्रजवासियों के साथ नृत्य भी करते थे । सुबह ९ बजे से होरी का नृत्य प्रारम्भ होता था और शाम के चार बजे तक होता रहता था । नन्दगाँव वाले बाबा से कहते थे – 'बाबा ! तू बरसाने का है, इसलिए नाच ।' उनके कहने पर बाबा नृत्य करने लगते थे । श्रीबाबा के साथ नन्दगाँव वालों का हास-परिहास हुआ करता था ।

मैं सन् १९६४ में बाबा के सम्पर्क में आया । बरसाने में कुछ लड़के बाबा के पास संस्कृत पढ़ते थे तो उनको परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त हुए । उनके साथ कभी-कभी मैं भी बाबा के पास मान मन्दिर चला जाता था । मैं तो पढ़ने के लिए नहीं जाता था, देखने के लिए जाता था कि बाबा कैसे हैं ? बाबा ब्रजवासियों के बच्चों का बड़ा सम्मान करते थे । नन्दगाँव वालों से तो बाबा विशेष प्रेम करते थे । हम लोग बाबा के गायन-वादन को भी सुनते थे । उस समय बाबा ने बहुत-से ब्रज के रसियाओं की भी रचना की थी । सन् १९६६ में मैंने हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की । बाबा नन्दगाँव आते-जाते रहते थे, नन्दभवन में समाज में भी मैं उनका दर्शन करता था । मैं अपने पिताजी को भी बताता था कि रमेशबाबा 'प्रयाग' के हैं और वे बिल्कुल ठेठ (शुद्ध) ब्रजभाषा बोलते हैं । उनके जैसा सन्त मैंने अपने जीवन में कोई नहीं देखा । बाबा के साथ मैंने लाड़लीदासजी को भी देखा था । वे भी सन्त थे और पहले वे बाबा के साथ मान मन्दिर में ही रहते थे । उन्होंने तो आगे चलकर अपना अलग आश्रम बना लिया किन्तु बाबामहाराज ने तो कभी अपना कोई आश्रम नहीं बनाया । बाबा तो फक्कड़ सन्त हैं और सदा फक्कड़ ही रहेंगे । अब तो उन्हें सरकार के द्वारा 'पद्मश्री' पुरस्कार दिया गया है, ऐसा सम्मान और कौन पा सकता है ? सन् १९८४ में मेरी भतीजी ने बरसाना से परीक्षा दी थी, तब पण्डितजी से मेरा विशेष सम्बन्ध जुड़ा । उसके पहले भी मैं केवल यही जानता था कि ये बाबूलालजी के पुत्र हैं । बाबूलालजी से मेरी रिश्तेदारी भी थी । पण्डितजी के बड़े भाई को भी मैं जानता था । सन् १९८४ में ही पण्डितजी की भाभी कमला मास्टरनीजी के साथ भी सम्बन्ध प्रगाढ़ हुए क्योंकि मेरी भतीजी बरसाने में परीक्षा देती थी और मैं उसे परीक्षा दिलाने बरसाने ले जाता था । जब पण्डितजी से मेरा सम्बन्ध जुड़ा तो उनके माध्यम से श्रीबाबामहाराज से भी मेरा सम्बन्ध और अधिक हो गया क्योंकि पण्डितजी का श्रीबाबामहाराज से अति घनिष्ट प्रेम है । पण्डितजी के घर (चिकसौली) में कभी-कभी मैं रुकता भी

था । पण्डितजी घर में नहीं रुकते थे, वे तो रात को बाबा के पास मानमन्दिर में ही रहते थे । पण्डितजी में एक विशेष बात थी कि वे कुछ भी करते तो बाबामहाराज से सलाह लेकर ही करते थे । बाबा से उनको कुछ भी कहना होता तो पूरे दिन की छोटी-बड़ी रिपोर्ट वे उनको दिया करते थे । बाबामहाराज भी उनको नेक (सही) सलाह दिया करते थे । पण्डितजी के अन्दर यह विशेषता थी कि श्रीबाबामहाराज ने उनको कुछ भी कह दिया तो वे उनकी बात को पूरी तरह मानते थे । बाबा ने जो कुछ भी कह दिया, पण्डितजी उसको पूर्णतया मानते थे । बाबामहाराज के प्रति पण्डितजी की आस्था विलक्षण है । पण्डितजी ने संस्कृत से शास्त्री की परीक्षा दी, मैं भी उनके साथ रहता था । बाबा महाराज उनको संस्कृत पढ़ाते थे और बताते थे कि परीक्षा में इस तरह लिखना और पण्डितजी बाबा की बतायी हुई विधि के अनुसार लिखते थे तो परीक्षा में उनको प्रथम श्रेणी प्राप्त होती थी । राधाकान्तजी ने भी परीक्षा दी, उनको भी प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई । यह सब बाबा महाराज के ही निर्देशन में हुआ । वे उनको जैसा पढ़ाते थे या जो कुछ भी लिख कर देते थे, वे सब वेद वाक्य जैसे थे । बाबा के पढ़ाने जैसी न किसी की शैली है, न उनके जैसा शब्द-विन्यास है । वास्तव में उनके जैसा तो कौन हो सकता है ?

मानमन्दिर की पहली ब्रजयात्रा में दिल्ली से मित्तल दम्पत्ति आये थे । मित्तलजी की पत्नी ने अपना सामान उठाने के लिए मानपुर के एक लड़के को रखा था । एक दिन उनका बैग ले जाते समय वह सामान के बोझ से फट गया तो मित्तल दम्पत्ति ने उस लड़के को पीट दिया । मुझे बहुत बुरा लगा और मैंने बाबा महाराज को बताया तो उन्होंने कहा कि यह तो गलत बात है । किसी ब्रजवासी को कभी पीटना नहीं चाहिए । मित्तल दम्पत्ति ने कहा कि वह तो नौकर है । श्रीबाबा ने उनको बहुत फटकारा और कहा कि नौकर है तो क्या हुआ, गलती तो तुम्हारी ही है, तुमने बैग में इतना अधिक सामान भर दिया तो उसके बोझ से बैग फट गया । श्रीबाबा ने सभी यात्रियों के बीच में ही मित्तल दम्पत्ति को फटकार लगायी । आगे चलकर ये मित्तल दम्पत्ति ही अपने ठाकुरजी मानबिहारीलाल को मान मन्दिर में दे आये ।

प्रश्न – श्रीबाबा के विषय में और भी कुछ बताइए ।

उत्तर – उनके विषय में मैं और क्या बताऊँ ? उन्हें तो सारी दुनिया ही जानती है । भारत सरकार तक ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया है । बाबा महाराज तो सर्वप्रिय हैं । कोई तो अपने को भला बताता है, कोई सबको भला बताता है । जो सबकी भलाई करता है, वही वास्तव में सबका प्रिय है, सबका हितैषी है । बाबा महाराज तो सबके लिए भले हैं क्योंकि उन्होंने सबका भला ही किया है । उनका सारा जीवन परोपकार से ही भरा है । इसलिए वे सर्वप्रिय हैं ।

प्रश्न – बाबा से जुड़ने के बाद आपको कैसा अनुभव हुआ ?

उत्तर – बाबा से जुड़कर तो मेरा जीवन ही बदल गया है । बाबा की ब्रजयात्रा में सुबह तीन बजे ही मैं जग जाता था, तभी से लेकर अब तक मेरा सुबह तीन बजे ही जागने का नियम बन गया है । यह बाबा की ब्रजयात्रा का ही प्रभाव है । उससे मेरी दिनचर्या ही बदल गयी । बाबा के सत्संग के प्रभाव से मेरे स्वभाव की बहुत-सी कमियाँ भी दूर हो गयीं । मेरे कई मित्रों पर भी श्रीबाबा के सानिध्य का विशेष प्रभाव पड़ा, जिससे वे सब भक्त-स्वभाव के बन गए ।

बाबा महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली हैं । जब बाबा ने वृन्दावन में संस्कृत से परीक्षा दी थी तो प्रश्नपत्र बड़ा ही कठिन था । कक्षा के अन्य सभी विद्यार्थियों को नक़ल कराने के लिए पुस्तकालय से पुस्तकें उपलब्ध करायी गयीं । बाबा महाराज से भी किसी ने कहा कि आप भी नक़ल के लिए पुस्तक ले लीजिये । श्रीबाबा ने कहा कि मुझे नकल नहीं करना क्योंकि मुझे डिग्री की आवश्यकता नहीं है । नकल न करने पर भी बाबा को ६५ प्रतिशत अंक प्राप्त हुए । पूरे विश्वविद्यालय में बाबा के सबसे अधिक अंक थे । जब फाइनल की परीक्षा देने का समय आया तो गोविन्दशरणजी ने बाबाश्री से कहा कि जब आप परीक्षा देंगे तो मुझे तो कोई स्थान ही नहीं प्राप्त होगा । उनकी इच्छा को पूरा करने के लिए बाबा ने अध्ययन तो किया किन्तु परीक्षा नहीं दी । उन्होंने कहा कि मैं तो साधु हूँ । मुझे डिग्री से तो कोई लेना-देना नहीं है, क्या मैं डिग्री को चाटूँगा ? यदि मेरे परीक्षा न देने से किसी को प्रथम स्थान प्राप्त होता है, डिग्री मिलती है तो वह उसे प्राप्त करे । मैं परीक्षा नहीं दूँगा । इस तरह श्रीबाबा ने परीक्षा नहीं दी ।

मेरे संस्कृत व्याकरण के गुरुजी थे, वे रंगलक्ष्मी में पढ़ाते थे, उनके पास श्रीबाबा पढ़ने के लिए गये । उन्होंने श्रीबाबा को संस्कृत व्याकरण की पुस्तक लघु सिद्धान्त कौमुदी पढ़ाई तो बाबा ने इतने कठिन विषय को एक सप्ताह में पूरा पढ़ लिया । इसके बाद गुरुजी ने बाबा को और भी पढ़ाया, बाबा ने कई महीनों के कोर्स को थोड़े ही दिनों में पूरा तैयार कर लिया तथा गुरुजी से और पढ़ाने को कहा तो गुरुजी ने हाथ जोड़ लिए और कहा – 'बाबा ! अब मेरे पास कोई और विद्या नहीं है, जिसे मैं आपको पढ़ा सकूँ ।' अब आप स्वयं अनुमान कीजिये कि ऐसे प्रतिभा सम्पन्न बाबाश्री के बारे में क्या कहा जा सकता है, जो कई महीनों में भी बड़ी कठिनाई से पढ़ी जाने वाली लघु सिद्धान्त कौमुदी को एक सप्ताह में पूर्ण कर ले, सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन पूर्ण कर ले ।

एक बार होरी लीला के दो पदों को बाबा ने मुझसे दो बार पूछा, दो बार बताने से ही बाबा को वह अच्छी तरह याद हो गए । ऐसी विलक्षण स्मरण-शक्ति भला किसकी हो सकती है ? बाबा की माताजी बताती थीं कि इनके चार ग्रह उच्च के हैं । किसी राजा के दो अथवा तीन ग्रह उच्च के होते हैं । भगवान् राम और भगवान् कृष्ण के चार ग्रह उच्च के थे । इसी प्रकार बाबा के चार ग्रह उच्च के हैं । श्रीबाबामहाराज के सेवक पूर्ण निष्ठा के साथ भक्तिभावपूर्वक उनकी सेवा करते हैं । किसी राजा-महाराजा की भी इतनी अधिक भावपूर्वक सेवा नहीं होती होगी, जितनी श्रीबाबामहाराज की होती है । आजकल कलियुग के प्रभाव से तो पिता को ही घर में पुत्र लोग पानी को नहीं पूछते हैं और बाबा की सेवा तो अनेकों सेवक बड़ी ही निष्ठा के साथ कर रहे हैं । अपने माता-पिता से भी बढ़कर वे बाबा को मानते हैं, उनकी सेवा करते हैं । बाबा के अन्दर कुछ विशेष है, तभी तो वे उनकी इतनी सेवा करते हैं ।

बाबा ने ब्रज के पर्वतों की रक्षा के लिए कितना बड़ा आन्दोलन किया, कामां में वे स्वयं आमरण अनशन करके धरने पर बैठे । उस समय केशव देव गौड़ीय मठ के नारायण महाराज उनके पास आये और कहा – 'बाबा ! हम आपके साथ हैं, आप इस अनशन को तोड़ दीजिये ।' स्वयं राजस्थान के मुख्यमन्त्री ने बाबा को पर्वतों के खनन को बन्द करने का आश्वासन दिया । इस प्रकार श्रीबाबा ने ब्रज के पर्वतों का संरक्षण किया, वनों और कुण्डों का संरक्षण किया । उन्हें ब्रज का उन्नायक कह सकते हैं । वास्तव में श्रीबाबा ही ब्रजमण्डल के उन्नायक हैं । भारत सरकार ने उनको 'पद्मश्री' पुरस्कार केवल गो-सेवा के लिए ही प्रदान नहीं किया है, उनके समग्र व्यक्तित्त्व का निरीक्षण करने के उपरान्त उन्हें इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया है ।

श्रीमाताजी गोशाला को देख लो । चन्द्रसरोवर के तट पर सन्त श्रीठाकुरदासबाबा ने श्रीबाबामहाराज से एक बार कहा था कि आप गायों की सेवा कीजिए । आगे चलकर तो बाबाश्री ने ऐसी गो-सेवा की कि उनके द्वारा स्थापित माताजी गोशाला आज विश्व की सबसे बड़ी गोशाला है । विश्व में इससे बड़ी गोशाला कहीं नहीं है । जैसी गौ-सेवा 'माताजी गोशाला' में होती है, ऐसी सेवा तो मैंने आज तक किसी भी गोशाला में नहीं देखी ।

इसी प्रकार बाबा के निर्देशानुसार ब्रज के सभी गाँवों में और भारत के भी कई गाँवों एवं नगरों में प्रभात फेरियाँ चलायी जा रही हैं । खण्डार के नित्यानन्ददास बाबा ने पहले राजस्थान में बहुत-सी प्रभात फेरियाँ चलायी थीं । इसके बाद बाबा ने पहले बरसाने में इसका श्रीगणेश किया । गह्वरवन से श्रीजी के मन्दिर में मान मन्दिर के सभी भक्त कीर्तन करते हुए जाते थे और फिर वहाँ से पूरे बरसाने की परिक्रमा संकीर्तन करते हुए प्रतिदिन किया करते थे । वर्तमान में तो ब्रज के तथा भारत के हजारों गाँवों में श्रीबाबा की प्रेरणा से प्रभात फेरियाँ चल रही हैं । जैसे पहले विष्णुस्वामीजी ने एक सम्प्रदाय बनाया किन्तु उनके समप्रदाय को विस्तृत और सरस रूप दिया महाप्रभु वल्लभाचार्यजी तथा उनके सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने । इसी प्रकार नित्यानन्द महाराज ने प्रभात फेरी की प्रेरणा बाबा महाराज को दी थी किन्तु वर्तमानकाल में जो इसका रूप निखरकर आया तथा प्रभात फेरियों का व्यापक और सरस स्वरूप श्रीरमेश बाबा महाराज के द्वारा निर्मित किया गया । उनका तो हर क्षेत्र में ही अथाह समुद्र है । एक बार ब्रजयात्रा में नेपाल की कुछ मातायें आई थीं । मैंने उनको श्रीबाबा से मिलवाया । उन माताओं ने बाबा से कहा कि पहले भी हम लोग आपकी ब्रजयात्रा करके

नेपाल में गये और आप यात्रियों को अपने गाँवों में प्रभात फेरी चलाने हेतु जो कहते थे तो हम लोगों ने भी नेपाल में अपने गाँव में प्रभात फेरी शुरू कर दी है । इसी प्रकार भारत के कई प्रान्तों के लोग श्रीबाबा की प्रेरणा से अपने प्रान्तों के गाँवों एवं नगरों में प्रभात फेरी चला रहे हैं । नेपाल की मातायें तो श्रीबाबा के इस कार्यक्रम से इतना अधिक प्रभावित हुईं कि भावुक होकर रोने लगीं और उन्हें आशीर्वाद देने लगीं । श्रीबाबा के द्वारा संचालित राधारानी ब्रजयात्रा एक दिन विश्व विख्यात और विश्व की एक धरोहर बनेगी तथा सम्पूर्ण विश्व में राधारानी का नाम गुंजायमान होगा, उनके नाम से प्रभात फेरियाँ चला करेंगी । नेपाल की ही मातायें इसके बाद पुनः ब्रजयात्रा में आई थीं और मुझसे मिली थीं । उन्होंने बताया कि अब तो नेपाल के बहुत-से गाँवों में प्रभात फेरी चलने लगी है । हमारे देश भारत में तो प्रभात फेरियाँ चलती हैं किन्तु नेपाल तो विदेश है, जब वहाँ भी प्रभात फेरियाँ चलने लगी हैं तो ऐसे ही विश्व के कई स्थलों में होता होगा, उनके बारे में हम लोगों को पता नहीं है । एक बार मैं महाराष्ट्र गया था तो वहाँ मुझे कुछ लोगों के पास राधारानी ब्रजयात्रा का थैला मिला । वे लोग पण्डरपुर के पास के रहने वाले थे । मैंने उनसे पूछा कि क्या आप लोग हमारे बाबा की यात्रा में कभी आये थे तो मेरी ब्रजभाषा को समझकर उन लोगों ने बताया कि हम लोग रमेश बाबा महाराज की यात्रा में हर साल बरसाना जाते हैं । हमारे गाँव के बहुत से लोग उनकी यात्रा में जाते हैं । वे लोग महाराष्ट्र के प्रसिद्ध वारकरी सम्प्रदाय के थे । उन्होंने कहा कि हम वारकरी लोग पंडरपुर तक की पदयात्रा करते हैं, वह पूरे देश में प्रसिद्ध है लेकिन हम लोगों को बाबा महाराज की यात्रा भी बहुत अच्छी लगती है । वहाँ जाकर हम लोग ऐसे मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं कि अपने घरो में आकर भी कई दिनों तक हमें होश नहीं रहता और बहुत दिनों तक हमारे मन में बाबा महाराज की तथा बरसाने की स्मृति बनी रहती है । ब्रजयात्रा में समय से सबको निःशुल्क भोजन, दवाइयाँ, रजिस्ट्रेशन के समय थैले और पानी पीने लिए निःशुल्क बोतलें भी मिलती थीं कि इसमें पानी भर लिया करो । जिन गरीब यात्रियों के पास घर जाने के लिए रेल का किराया नहीं होता था, श्रीबाबा की कृपा से ऐसे अनेकों निर्धन यात्रियों को रेल का किराया भी प्रदान किया जाता था । जिस प्रकार कछुआ अपने अंडे समुद्र तटों पर छोड़ देता है और फिर समुद्र के जल के भीतर बहुत दूर चला जाता है किन्तु वहीं से वह अपने अंडे का चिन्तन करता है तो उसके चिन्तन मात्र से ही अंडे के भीतर उसके बच्चे का विकास एवं पोषण होता है । इसी प्रकार बाबा महाराज भी हजारों यात्रियों का ध्यान रखते हैं, कछुये की तरह उनके चिन्तन से ही पन्द्रह हजार यात्री चालीस दिनों तक आनन्द से निश्चिन्त होकर ब्रजयात्रा करते हैं । ऐसे महापुरुष इस संसार में कहाँ से मिलेंगे, हम तो चाहते हैं कि भगवान् उनको हजार वर्ष की आयु दें, जिससे कि वे सबको कल्याण की प्रेरणा देते रहें, सभी का मंगल करते रहें ।

प्रश्न – जब आप बहुत छोटे थे, उस समय आपने बाबा के दर्शन सबसे पहले कब किये थे ?

उत्तर – मैंने तो श्रीप्रियाशरणजी महाराज के साथ बाबा के दर्शन सबसे पहले किये थे । उस समय मैं बहुत छोटा था तो तब की बात अधिक याद नहीं है । अब मेरी आयु ७४ वर्ष है । मेरे चाचा थे उद्धवजी, उनके साथ भी मैंने बाबा के दर्शन किये थे । इसके बाद चिकसौली में बूढ़ी लीला (साँकरी खोर की मटकी फोड़ लीला) में भी बाबा के दर्शन होते थे । सन् १९६४ के बाद जब मैं बरसाना में राधा बिहारी इन्टर कॉलेज में पढने लगा, तब बरसाने-चिकसौली के विद्यार्थियों के साथ बाबा के दर्शन करने के लिए मान मन्दिर चला जाता था, तब धीरे-धीरे उनके प्रति श्रद्धा और रुचि उत्पन्न हुई तथा उनको मानने लगा कि ये तो महापुरुष हैं । मन्दिरों की समाज में मैंने उनको मृदंग बजाते हुए भी देखा, होरी आदि उत्सवों में उनको ब्रजवासियों के साथ नृत्य करते हुए भी देखा तो इस तरह उनके प्रति सम्मान की भावना बढ़ती चली गयी । प्रियाशरणजी महाराज के भी दर्शन मैंने किये थे । वे नन्दभवन में होने वाली समाज में आया करते थे । वृन्दावन के हरगूलाल सेठ उनकी सेवा किया करते थे । एक बार प्रियाशरणजी महाराज नन्दगाँव में ठाकुरजी के दर्शन करने आ रहे थे । वे बहुत दूर तक दौड़ लगाया करते थे । सेठ हरगूलाल ने उनके खाने के लिए भी बढ़िया व्यंजनों की, मेवा आदि की व्यवस्था कर रखी थी । एक दिन एक ब्रजवासी गड़रिया के पुत्र ने श्रीप्रियाशरण बाबा को देखकर कहा कि देखो, यह

हरगू सेठ का बिजार (बैल या सांड़) जा रहा है । उसी दिन के बाद से उन्होंने हरगू लाल के दिए हुए वस्त्र पहनना छोड़ दिया और आगे चलकर उसकी गलतियों को देखकर उन्होंने उसका भी त्याग कर दिया । उन्होंने अपनी तीस साल पुरानी कौपीन धारण कर ली और हरगूलाल से कहा – 'सेठजी ! मैं तुम्हारे दिए हुए वस्त्र, सुख-सुविधा के समस्त पदार्थों तथा नौकर-चाकर आदि का त्याग करता हूँ । एक ब्रजवासी बालक ने यह कहकर मेरे ज्ञान चक्षु खोल दिए कि हरगूलाल का बिजार जा रहा है । अब आज से मैं तुम्हारा बिजार नहीं हूँ, मैं तो ब्रजवासियों का बिजार हूँ । अब तो मैं उन्हीं के दिए टुकड़ों पर पलूँगा और तुम्हारा भोजन नहीं ग्रहण करूँगा ।' ऐसा कहकर उसी दिन से उन्होंने सेठ हरगू लाल का त्याग कर दिया था । वे बहुत सुन्दर कथा भी किया करते थे । एक बार कामां में उनकी कथा हुई थी । शायद उन्होंने राधासुधानिधि की कथा कही थी और बाद में श्रोताओं से कहा था कि इसे केवल सुन लेना किन्तु इसका प्रचार मत करना । उन्होंने बहुत ही सामान्य तरीके से कथा कही थी और घंटा-घड़ियाल आदि बजाने से मना कर दिया था । वे अपना सम्मान नहीं चाहते थे । ब्रजवासी उनका भी बहुत आदर करते थे । वे प्रेम सरोवर पर बहुत दिन तक रहे थे । जब मैं साइकिल से बरसाना पढ़ने के लिए जाया करता था तो रास्ते में उन्हें प्रणाम करता था ।

परमादर्श 'ब्रज-रहनी'

बाबाश्री के बारे में 'श्रीरमेशगोस्वामीजी, सेवायत – श्रीनन्दबाबा मन्दिर, नन्दगाँव' द्वारा कथित भावांश

मेरे पिताजी 'श्रीबाबामहाराज' का बहुत सम्मान करते थे, वे कहते थे कि मैंने बहुत से सन्तों का सत्संग किया है, धर्म सम्राट संत 'श्रीकरपात्रीजीमहाराज' भी मेरे घर आ चुके हैं किन्तु जब से बाबाश्री का दर्शन किया है, तब से उनमें हमारी विशेष श्रद्धा हो गई है ।

मैं सन् १९८४ में पण्डितजी के माध्यम से बाबा महाराज से अधिक जुड़ा हूँ । मैं कभी-कभी मानमन्दिर में पण्डितजी के पास ही रुकता था और पण्डितजी बाबा के पास ही सोते थे । उस समय मुझे बाबा का सान्निध्य प्राप्त होता था । वे कभी भी व्यर्थ बातचीत नहीं करते हैं । जब भी बात करते हैं तो परमार्थ की, राधा-कृष्ण की ही चर्चा करते हैं । मेरे सारे दुर्गुण तो बाबा महाराज के संग के प्रभाव से दूर हो गये । मैं जब कभी भी बाबा के पास जाता था तो वे नन्दगाँव का भजन अवश्य ही सुनाते थे । वे मुझसे कहते थे कि यह तुम्हारे सम्मान के लिए है । श्रीबाबा कीर्तन में बहुत ही तेज गति से नृत्य करते थे, यात्रा में भी वे नृत्य करते थे । मैंने बाबा के मुख से गह्वरवन में 'श्रीभगवद्-शरणागति' के विषय में कथा सुनी थी । मैं तो 'मानमन्दिर' दो-चार दिनों में चला जाया करता था । श्रीबाबा के साथ मैंने बहुत-सी ब्रजयात्रायें भी की हैं । प्रारम्भ की यात्राओं में जब टेंट नहीं होते थे तो मैं स्कूलों में यात्रा के रुकने का प्रबन्ध करवाया करता था ।

बाबा की माताजी से कई बार मेरी बाबा के विषय में बातचीत हुआ करती थी । एक बार मैंने बाबा की दीदी से पूछा कि आप आयु में बाबा से कितनी बड़ी हैं, बाबा आपसे कितने छोटे हैं तो यह सुनकर वे रोने लगीं और बोली कि बाबा तो मुझसे कई युग बड़े हैं । मैं तो कलियुगी हूँ और बाबा तो सतयुगी हैं । कभी-कभी स्नेहवश दीदी बाबा से नाराज भी हो जाया करती थीं और उनसे कहती थीं कि जब हमारी पीठ पर थापे लगे, तब तुम पैदा हुए । (लड़की जब पैदा होती है तो उसकी पीठ का पूजन किया जाता है ।) दीदी बाबा से आठ साल बड़ी थीं, आठ साल बाद बाबा का जन्म हुआ तो वे बाबा से कहती थीं कि मैं तो तुमसे बड़ी हूँ, जब मेरी पीठ पूजी गयी, तब तुम पैदा हुए हो । इस तरह वे बाबा से परिहास करती थीं । बाबा की माताजी भी मुझसे बड़ा स्नेह करती थीं । मैंने उनसे पूछा कि जब बाबा आपसे बिछुड़कर ब्रज में चले आये तो आपको उनका पता कैसे चला ? माताजी ने बताया कि प्रयाग से कुछ दूरी पर एक स्थान है – भरवारी । वहाँ पर कोई एक देवी का उपासक रहता था, वह लोगों की समस्याओं को हल किया करता था । वहाँ मैं बाबा के बारे में पता लगाने के लिए गयी थी । वह बृहस्पतिवार अथवा शनिवार को लोगों से मिलता था । माताजी एक दिन पहले वहाँ पहुँच गयीं । उनकी विकलता को देखकर वह बोला कि मैं अभी अनुष्ठान करके आपको बताता हूँ । उसने जो कुछ भी अपना

अनुष्ठान किया तो उसकी आँखें लाल हो गयीं और उसकी स्थिति तो मरणासन्न जैसी ही हो गई, कुछ देर बाद उसको होश आया तो उसने माताजी से कहा कि आपका बालक अभी जीवित है क्योंकि माताजी ने यह पूछा था कि मेरा बालक जीवित है कि नहीं और यदि जीवित है तो कहाँ है ? उसने माताजी को बताया कि आपका बालक जीवित तो है किन्तु सिद्धि के बल पर मैंने जिस आत्मा को उसका पता लगाने के लिए भेजा है, उनका अभी वहाँ प्रवेश नहीं है । वह ब्रजभूमि में है, वहाँ हर आत्मा नहीं जा सकती है । माताजी उसकी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं कि मेरा बेटा अभी जीवित है । बाद में वे बरसाना आयीं । माताजी बताती थीं कि रामेश्वर भगवान् की कृपा से बाबा का जन्म हुआ था, इसलिए उनका वास्तविक नाम तो रामेश्वर ही है । जिस समय बाबा की दीदी जीवित थीं तो बीच-बीच में वे प्रयाग भी जाती रहती थीं । वे बताती थीं कि जब भी मैं प्रयाग जाती थी तो वहाँ 'प्रयाग संगीत समिति' में भी जाती थी तो वहाँ बाबा ने संगीत में प्रथम पुरस्कार और स्वर्ण पदक प्राप्त किया था तो वहाँ अभी तक बोर्ड पर बाबा का नाम लिखा हुआ है । बोर्ड पर बाबा के लिखे नाम को देखकर मुझे रोना आता है कि मेरा भाई आज साधु बनकर कठोर वैराग्य के साथ ब्रज में कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहा है और यदि यह घर में होता तो विश्व के सर्वोच्च सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित होता । मैं उस समय दीदी से कहता था कि आप दुःखी क्यों होती हैं, बाबा तो आज भी विश्व के सबसे अधिक सम्मानित पद पर विराजित हैं ।

मेरे चाचाजी बताते थे कि एक बार नन्दगाँव में शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध गायक डागर बन्धु आये थे । उन्होंने किसी कार्यक्रम में अपना गायन प्रस्तुत किया । उस समय बाबामहाराज भी वहाँ पहुँच गये और अन्त में उन्होंने कहा कि एक हाजिरी मेरी भी हो जाए । बाबा ने उस समय वहाँ जो भी गीत गाया तो उसे सुनकर डागर बन्धु अत्यधिक आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे – 'अरे ! यह प्रतिभा कहाँ छुपी हुई है ?' उनकी बात सुनकर बाबा ने यह नहीं कहा कि मैं बहुत बड़ा कलाकार हूँ या बहुत अधिक शिक्षित हूँ । उन्होंने तो विनम्रतापूर्वक यही कहा कि मैं तो ब्रजवासियों के टुकड़ों पर पला हूँ, मैं कोई गायक नहीं हूँ ।

बाबा का शरीर पहले बहुत सुडौल था, वे बहुत अधिक बलवान और सुन्दर थे । यदि हजारों लोगों के भी बीच में 'बाबा' हों तो दूर से ही पता लग जाएगा कि ये 'बाबामहाराज' हैं । उनके द्वारा रचित पुस्तक 'रसिया रसेश्वरी' में ब्रज लीला से सम्बन्धित बहुत ही उच्च कोटि के रसमय रसिया हैं । ब्रज के रसिया की ऐसी पुस्तक पूरे ब्रज में कहीं भी नहीं है, बाबाश्री कृत रसियाओं की संख्या भी बहुत अधिक है, श्रीकृष्ण की एक-एक लीला पर अनेकों रसिया हैं । श्रीबाबा समय-समय पर नये रसियाओं की रचना करते रहते हैं ।

एक बार बाबा की ब्रजयात्रा सतोहा गाँव में रुकी थी । वहाँ बड़े जोर से आँधी-तूफान आया और वर्षा भी इतने जोर से हुई कि यात्रा के सभी टेंट-पाण्डाल आदि भीग गये । उस समय एक छोटे-से स्कूल में मैंने यात्रियों के रुकने की व्यवस्था की थी । उसमें एक-दो ही कमरे थे, जिसमें यात्रा का सामान रखा जा सकता था और यात्री तो बाहर भी सो सकते थे । यात्रियों के रुकने के लिए वहाँ जगह की बहुत कमी थी । बाबा उस समय एक बहुत ही बेकार से स्थान में बैठे थे तो मैंने उनसे कहा कि आपके लिए एक विशेष स्थान है, आप वहाँ चलकर रुकिए । उस समय बाबा ने मुझसे कहा कि ये ब्रजयात्री मेरे प्राण हैं, इनकी व्यवस्था करो । मेरे लिए व्यवस्था करने की कोई आवश्यकता नहीं है । मैं तो कहीं भी रुक जाऊँगा । उस समय साढ़े तीन सौ यात्री थे । उनके रुकने के लिए फिर अलग से स्थान की मैंने व्यवस्था की । बाबा महाराज जिस बेकार से स्थान पर रुके थे, वहाँ से कहीं और नहीं गये, जबकि उनके लिए तो गाँव का प्रत्येक व्यक्ति अपना कमरा देने के लिए तैयार था । इससे पता चलता है कि बाबा के हृदय में ब्रजयात्रियों के प्रति कितना अधिक वात्सल्य, कितनी अधिक करुणा है; वास्तव में यह है सच्ची साधुता । इसीलिए तो ब्रजवासी कहते हैं कि बाबा महाराज जैसा सन्त तो हम लोगों ने आज तक कभी नहीं देखा ।

मैंने प्रारम्भिक यात्रायें की हैं, जिनमें स्कूल की व्यवस्था करनी होती थी । स्कूल वाले भी बड़े प्रेम से अपने स्कूलों में यात्रा के रुकने का प्रबन्ध कर देते थे । उनके हृदय में बाबा के प्रति विशेष सम्मान था । वे लोग कहते थे कि अरे, हमारे गाँव

में रमेशबाबामहाराज की यात्रा आ रही है तो हमें यात्रा का स्वागत करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए । स्कूलों के प्रधानाचार्य और अध्यापक भी यात्रा में 'बाबा के सत्संग' का लाभ उठाने के लिए आते थे, बड़े प्रेम से उनकी कथा सुनते थे ।

बाबा ने कभी भी किसी बात को गोपनीय नहीं रखा, यह भी उनके सरल हृदय की एक बहुत बड़ी विशेषता है । न कहने योग्य बातों को, गुप्त रखने वाली व्यक्तिगत बातों को भी बाबा सबके सामने सार्वजिनक रूप से सत्संग में कह देते हैं । मैं तो यही समझता हूँ कि उनके समान चरित्रवान व्यक्ति दुनिया में कोई नहीं है । लोगों ने बाबा के ऊपर खूब लांछन लगाया, बाबामहाराज पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । यात्रा में सबके बीच में ही वे सोते थे ।

एक बार खायरा गाँव में 'बाबा' यात्रा में तख़्त पर बैठे थे । उस गाँव की एक महिला ने अपने साथ की स्त्रियों से कहा कि चलो, तुम्हें बाबा के दर्शन कराने ले चलूँ । जब वे 'बाबा' के दर्शन करने के लिए आयीं तो उस समय बाबामहाराज तख़्त के नीचे लेटे थे और उनके चारों ओर पर्दा लगा था । वह ब्रजवासिनी ब्रजभाषा में बोली – 'वो निपूतो अभी तो यहीं बैठ्यो थो, अब जाने कहाँ मर गयो ?' उस समय नन्दगाँव के ब्रजवासी भी वहीं थे, उन्होंने बाबा को बताया कि गाँव की स्त्रियाँ आपके लिये ऐसा कह रही हैं तो बाबा ने कहा – 'अरे, मुझे तो ब्रजवासियों का यही आशीर्वाद चाहिए । जब ब्रजवासी मुझे गाली देते हैं तो उसको सुनकर प्रसन्नता के कारण मेरा खून बढ़ जाता है ।'
इस प्रकार से श्रीबाबामहाराज ब्रजभावों में डूबे हुए सच्चे ब्रजभावुक संत हैं ।

'भावना' ही 'अव्यय श्री'

बाबाश्री के सत्संग (श्रीराधासुधानिधि '११/१२/१९९९') से संकलित

भावना ही प्रधान है और भाव सहित क्रिया ही भक्ति है । एक नौकर रख लो, वह भी काम करता है और एक परिवार का कोई प्रेमी स्त्री, पुत्र आदि भाव से सेवा करते हैं, उसमें कितना अन्तर है ? नौकर सदा पराया रहेगा क्योंकि उसको पैसे से मतलब है तथा जो भाव-प्रेम से सेवा करता है, वह सदा अपना रहता है । अतः क्रिया की प्रधानता नहीं होती है, प्रधानता होती है भावना की । बुद्धिमान पुरुष सदा अपने भाव को देखते हैं कि हमारा जो भीतर का भाव है, वह किस प्रकार का है और भाव पर दृष्टि रखने से ही 'भावना' की सिद्धि होती है तथा भावना की सिद्धि प्रभु की सिद्धि है । भाव बिगड़ते क्यों हैं ? मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार आकर भाव को विकृत कर देते हैं । इनके कारण दुर्भाव हो जाता है । इसीलिए मनुष्य ऊपर से साधन करता है, जप करता है, कीर्तन करता है, पाठ करता है और भीतर का भाव नहीं देख पाता है । भीतर का भाव बिना देखे क्रिया का अहं भाव बढ़ता है और प्रेम नहीं बढ़ता है । हमने इतना किया, हम ऐसा कर रहे हैं, इस तरह क्रिया से दो चीजें पैदा होती हैं । एक तो अहं पैदा होता है, वह संसार की ओर ले जाता है और जिस क्रिया में भाव का सम्पुट है, वह भगवान् की ओर ले जाती है । जिस समय क्रिया का अहं पैदा होता है, समझ लेना चाहिए कि सारी बातें विचार-विवेक से हीन हो गयीं । उसका फल यही होगा कि अहं बढ़ता जाएगा । वही क्रिया जब भाव से होती है तो भक्ति दे देती है जैसे अम्बरीषजी चक्रवर्ती सम्राट थे । उनका वैभव इतना था कि देवता भी उनके ऐश्वर्य को तरसते थे । उनकी क्रिया में कभी 'अहं' नहीं हुआ, क्यों नहीं हुआ क्योंकि संसार की किसी भी वस्तु में, यहाँ तक कि स्वर्ग तक की सम्पत्ति में उनकी न स्पृहा थी, न कामना थी । उनके हृदय में न कभी अहंता पैदा हुई, न ममता पैदा हुई । सीधे वे भावमार्ग से चले, इसका यह परिणाम हुआ कि वे तो क्या, उनके राज्य में ऐसी भक्ति फैली कि उनके राज्य में रहने वालों ने भी स्वर्ग की इच्छा नहीं की । भागवत में अम्बरीषजी के बारे में लिखा है –

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् । अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ (श्रीभागवतजी ९/४/१५)
सात द्वीपों में अर्थात् सारी पृथ्वी में उनका शासन था । उनको अव्यय लक्ष्मी प्राप्त थी । अव्यय लक्ष्मी का मतलब ऐसा धन जो सत्कर्म करने से आता है और कभी घटता नहीं है, बढ़ता है । सद्भाव से रसोई बनाओ, दस के लिए बनाओगे तो

बीस व्यक्ति खा लेंगे । ऐसा खूब देखा जाता है और जिनका हृदय छोटा होता है कि इतना खर्च हो गया, इतने लोग आ गये, चार आदमी बढ़ गये, सामान घट गया – इस तरह की सांसारिक बुद्धि जहाँ होती है, वहाँ कभी पूरा नहीं पड़ता है, हमेशा कमी ही रहती है । मन में कमी होती है तो बाहर भी सदा कमी रहती है । दिल को बड़ा बनाना ही भाव है । लोग बूढ़े हो जाते हैं, मर जाते हैं लेकिन उनका दिल बड़ा नहीं बन पाता है । जहाँ भाव से क्रिया की जाती है, वहाँ निश्चित ही चमत्कार होता है, परन्तु जिसका दिल ही छोटा है और सोचता है कि पाँच सौ आदमियों की जगह तीन बसें और बढ़ गयीं, इतने आदमी आ गये, अब क्या होगा ? हाय, हम तो मरे, बस समझ लो कि वहाँ तो मरे ही मरे, वहाँ कभी पूरा ही नहीं पड़ेगा । दिल गन्दा है, दिल छोटा है तो 'अव्यय श्री' प्राप्त नहीं होगी । भागवत में अम्बरीषजी के बारे में लिखा है, जो 'अव्यय श्री' कभी घटती नहीं है । प्रायः साधारण स्त्रियों में ऐसी आदत होती है कि दो-तीन लोग रह रहे हैं, कोई चौथा आ जाता है तो देखकर उनकी हालत ख़राब हो जाती है और सोचती हैं कि अब गुजर कैसे होगी ? जिसके भाव में उदारता है कि चाहे दस लोग आयें, चाहे बीस आयें, पचास आयें, वहाँ हजार लोग भी आ जाएँ तो उनकी पूर्ति हो जाती है, इसको 'अव्यय श्री' कहते हैं । 'अव्यय श्री' अम्बरीषजी को प्राप्त हुई और यह सबको मिल सकती है किन्तु इसके लिए दिल बड़ा बनना चाहिए । संसार में एक आदमी दूसरे को देखकर जलने-कुढ़ने लगता है । इसका मतलब यह है कि वह दरिद्र है और जीवन भर दरिद्र ही रहेगा । अम्बरीषजी के बारे में भागवत में लिखा है –

अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि । (श्रीभागवतजी ९/४/१५)

उनको अव्यय लक्ष्मी प्राप्त हुई और उनका वैभव अतुल था, जिसकी कोई तुलना ही नहीं थी लेकिन इतना मिलने के बावजूद भी – **'मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ।'** वे उसको सपना ही मानते रहे, उनका मन उसमें नहीं फँसा क्योंकि **'विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥'** (श्रीभागवतजी ९/४/१६) धन-सम्पत्ति में जरा भी मन गया तो अन्धकार में चले जाओगे, भगवान् के पास तो जाओगे नहीं । ये है मूल बात । हर मनुष्य अन्धकार की ओर जाता है और ऊपर से भजन करता रहता है । ऊपर से कहता है कि मैंने इतना ध्यान किया, कोई कहता है कि मैंने इतना पाठ किया, इतना जप किया ।

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु । प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम् ॥ (श्रीभागवतजी ९/४/१७)

अव्यय लक्ष्मी, जो कि देवताओं को भी नहीं मिलती है, उसे अम्बरीषजी मिट्टी के समान समझते थे । यह जो शास्त्र में लिखा है 'अव्यय श्री', यह सच में मिलती है । इसको मूढ़ आदमी या छोटे दिल का आदमी नहीं समझ सकता है । इस संसार में कितने ही लोग सारे जीवन साधन-भजन करते हैं और अपने छोटेपन या ओछेपन को नहीं जानते हैं, विशेषकर जैसे स्त्रियाँ हैं, बच्चे हैं या मूढ़ पुरुष हैं, वे नहीं जानते हैं । उदाहरण के लिए जैसे मान मन्दिर में एक सन्त ब्रह्मचारीजी आये, जो पहले डॉक्टर थे, उनके पास यहाँ के ही लोग कीमती दवाइयाँ रख देते थे । किसी ने उनसे कहा कि आप हर आदमी को इतनी कीमती दवाई क्यों दे देते हैं तो उन्होंने जवाब दिया कि हम जितना देंगे, उतना ही बढ़ेगा और वास्तव में उनके पास दवाइयाँ बढ़ती ही गयीं, कभी घटी नहीं ।

श्रीमानमन्दिर की ब्रजयात्रा में कोई भी बाहरी व्यक्ति आ जाए, कभी उसको भोजन करने से हटाया नहीं जाता तो सदा ही सबकी पूर्ति हो जाती है और भोजन अव्यय हो जाता है । जो छोटे लोग होते हैं, वे सदा छोटे ही बने रहते हैं, 'अव्यय श्री' उनको कभी नहीं मिलेगी । हमारे यहाँ के रस मन्दिर में प्रतिदिन कितने ही लोग भोजन करने आते हैं, चाहे कितने ही लोग आ जाएँ, वहाँ कभी कोई कमी नहीं रहती । समझ में नहीं आता कि कैसे पूर्ति हो जाती है और वहाँ सदा पूर्ति हो जाती है क्योंकि वहाँ उदारता, सहिष्णुता है तो सहज ही वृद्धि हो रही है । वहाँ ऐसा नहीं है कि अधिक लोग भोजन करने आ जाएँ तो हाय-हाय किया जाता है कि अब क्या होगा ? इस तरह की वृत्ति मनुष्य के मन को छोटा कर देती है, उसके वैभव को नष्ट कर देती है । जहाँ पर उदारतापूर्वक साधु सेवा होती है, वहाँ पर खूब साधन उपलब्ध हो जाते हैं । अम्बरीषजी को अव्यय लक्ष्मी प्राप्त थी, कितना भी खर्च करो, कभी समाप्त ही नहीं होता था । दिल को बड़ा बनाना

चाहिए । बड़े-बड़े करोड़पति दरिद्र बने रहते हैं, वे किसी को एक गिलास पानी नहीं दे सकते, एक कप चाय नहीं दे सकते, वे करोड़ों-अरबों रुपये कमाकर मर जाते हैं किन्तु उनका दिल छोटा ही बना रहता है । अम्बरीषजी को 'अव्यय श्री' मिली किन्तु उसको पाकर भी उन्होंने उसे मिट्टी ही समझा, तभी उनका धाम में भाव उत्पन्न हुआ, भगवान् के नाम में और सेवा में भाव उत्पन्न हुआ । इस रास्ते से चलने से भाव उत्पन्न होता है । भाव इस तरह से पैदा नहीं होगा कि हम अन्धे की तरह बोलें, अन्धे की तरह चलें और अन्धे की तरह काम करें । अम्बरीषजी का ऐसा भाव था –

'स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।' उनका मन सदा श्रीकृष्ण के चरणकमलों में रहता था । हम लोग तो भगवान् के चरणों का ध्यान करने भी बैठेंगे तो व्यर्थ की बातें ध्यान में आएँगी । अम्बरीषजी की वाणी अपने आप सदा भगवान् के गुणों का गान करने में लगी रहती थी । हम लोगों से तो कहने पर भी भगवान् का गुणगान नहीं होता है । कहने पर भी भगवन्नाम-कीर्तन में प्रवृत्ति नहीं होती है, इससे पता चलता है कि हम लोगों में भाव तो है ही नहीं ।

'करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥'

चक्रवर्ती सम्राट होते हुए भी वे भगवान् के मन्दिर में अपने हाथों से बुहारी लगाते थे, महात्माओं ने यहाँ तक लिखा है कि वे भगवान् को भोग लगाने के लिए स्वयं चक्की चलाकर आटा पीसते थे । ये क्या है, यह भाव है । अम्बरीषजी के कान सदा भगवान् की कथा और कीर्तन सुनने के लिए तरसा करते थे, यह भाव है । **'मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् ।'** उनकी आँखें सदा भगवान् मुकुन्द के श्रीविग्रह और सन्तों के दर्शन में लगी रहती थीं । उनका कभी दुनिया की अन्य वस्तुओं के दर्शन में भाव नहीं होता था । वे भक्तों के शरीर को भगवान् का शरीर समझते थे और इसी भाव से उनका स्पर्श करते थे, उनका आलिंगन करते थे ।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी का संकीर्तन-प्रभाव

अकेले-अकेले भजन तो सब करते हैं लेकिन जब वे मिलकर संकीर्तन करते हैं – **'सङ्घीभूय कीर्तयन्ते इति संकीर्तनम्'** – तो इसका बहुत अधिक प्रभाव सारे संसार पर पड़ता है । अकेले भजन करने का उतना प्रभाव नहीं पड़ता है । इसीलिए प्रभात फेरी चलाई गयी है कि बहुत से लोग कीर्तन करते हुए एक साथ चलें । भागवत में धर्मराज ने कहा है – **'तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ।'** संकीर्तन करने से सारे संसार का कल्याण होता है । इसीलिए सभी को मिलकर प्रभात फेरी में जाना चाहिए । इससे विश्व का कल्याण करने का फल मिलता है । विश्व कल्याण यज्ञ का फल मिलेगा । इसमें कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिए । जब भक्त लोग भगवान् का गुणगान गाते चलते हैं तो उनके गान से जो वातावरण बनता है, वह संसार को शुद्ध करता है । संसार से मतलब है कि केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, पेड़-पौधे आदि का भी कल्याण होता है । इनके भी पाप नष्ट होते हैं । मक्खी, मच्छर, कीट आदि तथा हमारे शरीर में बहुत से सूक्ष्म जीवाणु रहते हैं, भगवान् के नाम का कीर्तन करने से इन सबको लाभ मिलता है । इसीलिए भागवत में लिखा है कि भगवान् का नाम जोर से लेना चाहिए ।

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् । हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ (श्रीभागवतजी १२/१२/४६)

किसी तरह गिरते समय, आर्त होकर, विवश होकर, कैसी भी स्थिति में जो भगवान् का नाम जोर से लेता है, उसके रोम-रोम के सभी पाप जल जाते हैं । हम लोगों को यह दिखायी नहीं पड़ता है लेकिन पाप अवश्य ही जलते हैं ।

जब चैतन्य महाप्रभुजी बंगाल से ब्रज के लिए चले थे तो रास्ते में झारखण्ड का जंगल पड़ा । आज भी वहाँ जंगल है । भारत में ऐसे भी जंगल हैं कि जहाँ दस कोस तक आदमी दिखाई नहीं देते हैं । उन जंगलों में भगवान् के नाम का कीर्तन करते हुए महाप्रभुजी जा रहे थे । उनके द्वारा जोर से हरि नाम लेने से सर्प, शेर, चीते और पागल हाथियों तक को कृष्ण भक्ति मिल गयी थी ।**'जा रहे गौर सुन्दर झारखण्ड वन के पथ पर'** वे कृष्ण, गोविन्द को पुकारते हुए जा रहे थे

– 'हे कृष्ण ! तुम कहाँ हो ?' महाप्रभु इस प्रकार जा रहे थे जैसे विरह से जलती हुई मशाल जा रही हो । **'जैसे जलती कोई मशाल, विरही वियोग से हो बेहाल ।'** गौर हरि रो रहे हैं और पुकारते हैं – 'हे गोपाल ! तुम कहाँ हो ?'

'क्रन्दन करते श्रीकृष्ण हेतु' कभी-कभी वे प्रेम के कारण गिर पड़ते, बेहोश हो जाते । **'कबहू हो जाते मन अचेत'** कभी-कभी मूर्च्छित हो जाते थे । **'कबहू मूर्च्छा में गिर जाते, कबहू जड़ जैसे हो जाते ।'** गौरांग प्रभु कहते थे – गोपाल ! तुम कहाँ छिपे हो ? **'तुम कहाँ छिपे हो राधावर, झारखण्ड वन के पथ पर ।'** कभी-कभी वे रोकर चिल्लाते थे । **'रो-रोकर नाद करने वन में'** कभी भगवान् के लिए हुंकार भरते थे । **'हुंकार करें उस निर्जन में, अति विकल वेदना ले मन में, आँसू की वर्षा नैनन में ।'** गोपाल को बुलाते-बुलाते कभी उनको ठोकर लगती तो गिर पड़ते । **'गिरते-पड़ते ठोकर तन में, लग जाती ध्यान नहीं मन में ।'** वे गोपाल को बुलाते – **'आओ आओ हे ब्रजनागर, झारखण्ड वन के पथ पर ।'**

एक बार महाप्रभु जा रहे थे तो एक भूखा शेर रास्ते में पड़ा सो रहा था । उनके सेवक गोविन्द ने कहा – 'प्रभो ! बीच रास्ते में एक शेर है, आगे मत बढ़िये । अगर उसके ऊपर पाँव पड़ गया तो हम दोनों का सफाया हो जाएगा ।' लेकिन महाप्रभु तो भगवान् के प्रेम में ऐसा डूबे थे कि उन्हें सुनायी ही नहीं पड़ा कि कौन शेर, कहाँ रहता है ?

'मग बीच सो रहा एक सिंह, जाने का रस्ता बीच छेक ।'

महाप्रभु गोपाल को पुकारते हुए उसी रास्ते से चले जा रहे थे, सेवक ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया और बोला – 'प्रभो ! रुक जाओ ।' **'सेवक ने बढ़ प्रभु को रोका, आगे के खतरे से टोका ।'** लेकिन महाप्रभुजी नहीं रुके, उनका हाथ पकड़कर सेवक ने कहा – 'प्रभो ! आगे देखिये शेर सो रहा है ।' जब वे नहीं रुके तो सेवक ने उनका दुपट्टा पकड़कर खींचा और बोला – 'रुको-रुको ।' **'खींच लिया तन का जो वस्त्र'** सेवक ने बड़े जोर से उनका दुपट्टा खींचा, फिर भी वे नहीं रुके । कपड़ा सेवक के हाथ में आ गया, दुपट्टा खुल गया, वे खुले शरीर हो गये लेकिन रुके नहीं, चले गये । **'प्रभु रुके न चलते हो निवस्त्र ।'** उनका पाँव ठीक सिंह के मुँह पर पड़ गया । महाप्रभु को होश नहीं था, वे तो गोपाल को पुकारते हुए जा रहे थे । **'प्रभु का पग पड़ा सिंह ऊपर, झारखण्ड वन के पथ पर ।'** जब ठोकर पड़ी तो शेर की आँख खुली लेकिन अब वह शेर नहीं रहा, वह तो महाप्रभु के पैर की एक ठोकर लगने से भगवान् का भक्त बन गया । लाखों जन्म तपस्या करने पर भी जो भक्ति नहीं मिलती है, वह उस शेर को मिल गयी । **'पग छूने से वह सिंह जगा, उसका भी देखो भाग्य जगा ।'** देखो, गजराज ने भी भगवान् को बुलाया था । हाथी हो, चाहे शेर हो; जिस पर भगवान् की दया होती है, उसे उनकी भक्ति मिल जाती है । महाप्रभु की कृपा हुई तो वह शेर कृष्ण-कृष्ण कहते हुए भगवान् के प्रेम में झूमने लगा । **'वह लगा श्रीकृष्ण नाम कहने, फिरकी-सा लगा भ्रमण करने । पशु योनी में भी वह पाया, श्रीकृष्ण प्रेम धन मन भाया ।'** यह भक्ति का चमत्कार है । **'यह चमत्कार भक्ति का वर, झारखण्ड वन के पथ पर ।'** उसी वन में एक बहुत बड़ा सरोवर था । एक दिन जब महाप्रभु उसमें नहाने के लिए चले तो दूसरी ओर से पागल हाथी चले आ रहे थे । पागल हाथी मार डालते हैं । महाप्रभु के सेवक ने कहा – 'प्रभु ! सरोवर में मत जाओ । उधर पागल हाथी आ रहे हैं ।'

'प्रभु चले नहाने सरवर में, प्रति क्षण आवेश लिए तन में । आ रहा एक हाथी पागल, चिग्घाड़ कर रहा वह मैंगल ।'

सेवक ने कहा – 'प्रभु ! रुक जाओ ।' **'सेवक ने कहा प्रभु बाहर, आ जाओ मेरे जीवन धन ।'** महाप्रभु ने नहीं सुना और उस सरोवर में नहाने के लिए चले गये । **'नहीं सुना प्रभु ने उसका स्वर, झारखण्ड वन के पथ पर ।'** पागल हाथी पास में आया । पागल हाथी तो चीर देता है । **'पागल हाथी समीप आया'** महाप्रभुजी ने सरोवर से जल का छींटा लिया और उस पागल हाथी के ऊपर फेंक दिया । **'प्रभु ने जल छींटे छिड़काया । जल छींटों ने कर दिया कमाल, पागल गज प्रेम में फिर पागल ।'** वह हाथी भी चिग्घाड़ने लगा – 'कृष्ण कहाँ, कृष्ण कहाँ ?' **'वह कृष्ण कृष्ण चिग्घाड़ रहा, हरि प्रेम में पागल नाच रहा । यह कैसा कौतुक जल भीतर, झारखण्ड वन के पथ पर ।'** उस प्रेम पगले हाथी को छूने से उसके साथ के सभी हाथी भी भगवान् के प्रेम में पागल हो गये ।**'उस गज के जो गज थे साथी, सब हरि प्रेमी बन गये हाथी । सब कृष्ण कृष्ण चिग्घाड़ रहे, सूँडों से सूँड मिलाय रहे । वे दीवाने सब नाच रहे, हरि कीर्तन वन में करा रहे ।'** सारे जंगल में

भक्ति फ़ैल गई । **'भक्तों का निर्बन्धन निर्झर, झारखण्ड वन के पथ पर । देखो जा रहे गौर सुन्दर, झारखण्ड वन के पथ पर ।'** कृष्ण-कीर्तन का अमोघ प्रभाव होता है । इसी तरह से कीर्तन करना चाहिए । श्रीजी जब प्रेम में भरकर 'कृष्ण' नाम लेती हैं तो वह अलग ही होता है । कीर्तन तो सभी लोग करते हैं लेकिन जब चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते थे तो वह कीर्तन अलग ही होता था । उनके मुख से जब 'कृष्ण' नाम निकलता था, वह अलग ही होता था । रामायण को पढ़ने से पता चलता है कि नाम हम लोग भी लेते हैं और भरतजी तथा निषादराज जब नाम लेते थे तो पत्थर पिघल जाते थे । उनके द्वारा नाम लेने में वह शक्ति थी कि पाषाण भी पिघल जाते थे ।

हमारे गुरुदेव एक कथा सुनाते थे कि एक बार वल्लभकुल का एक वैष्णव गिरिराजजी की परिक्रमा कर रहा था । वह गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिष्य था । परिक्रमा करते हुए वह थक गया तो एक पेड़ के नीचे बैठ गया । उस पेड़ के हर पत्ते से आवाज आ रही थी – **'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥'** दूसरे किसी पेड़ के पत्तों से ऐसी आवाज नहीं आ रही थी । वह वैष्णव अपने गुरुदेव गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पास गया और उनसे पूछा कि एक ही पेड़ के पत्तों से हरे कृष्ण महामंत्र की आवाज क्यों आ रही थी, जबकि वहाँ अन्य किसी भी पेड़ के पत्तों से हरि नाम की आवाज नहीं आ रही थी । प्राचीन काल के महापुरुषों में साम्प्रदायिक द्वेष, संकीर्णता नहीं थी, यह अवगुण तो अब ज्यादा बढ़ गया है । गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने बताया कि गिरिराजजी की परिक्रमा करते समय श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उस पेड़ के नीचे बैठकर थोड़ी देर तक विश्राम किया था, उन्हीं के प्रभाव से उस पेड़ के हर पत्ते से हरे कृष्ण महामन्त्र की ध्वनि सुनायी दे रही थी । इसका यह अभिप्राय है कि धाम की शक्ति का विकास भगवन्नाम से होता है । जब कुसुम सरोवर के तट पर यमुनाजी की प्रेरणा से वज्रनाभजी, परीक्षितजी और श्रीकृष्ण की पत्नियों ने कीर्तन किया था तो वहाँ के पेड़ों के पत्ते-पत्ते से श्रीकृष्ण प्रकट हो गये थे । कीर्तन करने से धाम की शक्ति जागृत हो जाती है । हम लोग कीर्तन करते हैं तो ऐसा नहीं कि केवल हमें ही लाभ होता है बल्कि इससे धाम की सेवा होती है और सारे विश्व का मंगल होता है ।

सच्ची शरणागति का स्वरूप

चैतन्य महाप्रभु श्रीवास पण्डित के घर में कीर्तन किया करते थे । लोग समझते थे कि इनकी आसक्ति है इस घर में और उनको बदनाम करते थे । उनको वाम मार्गी बताते थे । जो लोग गलत सोचते हैं, वे तो सोचेंगे ही । एक दिन ऐसा हुआ कि श्रीवास पण्डित का पुत्र बीमार हुआ और इतना अधिक बीमार हुआ कि यह निश्चित हो गया कि थोड़ी देर में यह मर जाएगा । श्रीवास पण्डित ने देखा कि यह लड़का थोड़ी देर में मरने वाला है और मरेगा जरूर क्योंकि उसकी नाड़ी जा रही थी । श्रीवास जी ने अपनी पत्नी को बुलाया और उससे कहा – 'इस लड़के को लेकर घर के पीछे चली जाओ ।' पीछे केले का बगीचा था । श्रीवास जी बोले कि इस लड़के को लेकर पीछे इसलिए जाओ क्योंकि इसके प्राण जा रहे हैं, यहाँ यह मरेगा, सामने रहेगा तो तुम रोओगी । तुम्हारे रोने पर महाप्रभु का कीर्तन बन्द हो जायेगा । यदि उनके कीर्तन में बाधा आ गयी तो मैं गंगाजी में डूबकर मर जाऊँगा, जीवित नहीं रहूँगा । श्रीवासजी की पत्नी समझ गयी कि ये निश्चित ही मर जायेंगे, इसलिए वह अपने बेटे को लेकर घर के पीछे बगीचे में चली गयी । थोड़ी ही देर में वह लड़का मर गया लेकिन श्रीवासजी की पत्नी उसको लेकर बगीचे में ही बैठी रही और अपने पति के डर के कारण रोई नहीं । उसने सोचा कि यदि मैं रोऊंगी तो मेरे पति निश्चित ही गंगा में डूबकर मर जायेंगे । महाप्रभु भी चाहते थे कि सभी लोगों को पता चल जाए कि मैं इनके घर में प्रतिदिन कीर्तन क्यों करता हूँ ? लोग समझते थे कि ये आसक्त हैं । महाप्रभु ने बीच रात में अचानक कीर्तन बन्द कर दिया । वे जानते थे कि इनके यहाँ ऐसी भक्ति है, जो संसार में कहीं नहीं है । इसीलिए मैं यहाँ कीर्तन करता हूँ । किवाड़ बन्द कर दिया जाता था, जिससे कि बाहरी लोग उस कीर्तन में न जा पायें । सारी रात श्रीवास जी के घर में महाप्रभु का कीर्तन और नृत्य होता था । बीच में ही महाप्रभु ने कीर्तन रोक दिया और

सबको बैठा दिया जबकि उनका कीर्तन बीच में कभी रुकता नहीं था, सारी रात कीर्तन व नृत्य होता था । हम लोग क्या कीर्तन करेंगे ? एक घंटे में ही मुश्किल हो जाती है । जब महाप्रभु ने बीच में ही कीर्तन रोक दिया तो सभी भक्तों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज बीच में ही कीर्तन क्यों रुक गया ? महाप्रभु जी ने बुलाया – 'श्रीवास ! ।' श्रीवासजी आये । महाप्रभु ने उनसे कहा – 'बैठो, तुम्हारा बेटा कहाँ है ?' श्रीवास जी समझ गये कि महाप्रभु जानते हैं कि वह मर गया है । अब यदि मैं कहूँगा कि मेरा बेटा मर गया है तो इनका कीर्तन रुक जाएगा । इसलिए उन्होंने झूठ बोल दिया – 'प्रभो ! वह कहीं खेल रहा होगा ।' महाप्रभु बोले – 'अच्छा ! खेल रहा होगा ।' श्रीवासजी घबरा गये क्योंकि बात झूठी थी,उनका बेटा तो मर गया था । महाप्रभु वहाँ से उछले और सीधे बगीचे में गये, वहाँ से श्रीवासजी के पुत्र की लाश को अपने कन्धे पर रखकर लाये और सबके बीच में रख दिया । उन्होंने कहा – 'मैं इसीलिए इनके घर में रोज कीर्तन करता था । इनकी निष्ठा को देखो ।' इसके बाद महाप्रभु ने उस लड़के की आत्मा को बुलाया क्योंकि वे तो साक्षात् ईश्वर थे । महाप्रभु ने कहा – 'मुकुन्द ! ।' उनकी आवाज को सुनकर ऊपर से आवाज आई – 'हाँ प्रभो ! ।' जो लड़का मर गया था, उसका जीवात्मा बोल रहा था । महाप्रभु ने उससे पूछा – 'तुम कहाँ हो ?' जीव बोला – 'प्रभो ! मेरी आयु पूरी हो चुकी है, इसलिए मैं यहाँ से चला गया था ।' महाप्रभु ने पूछा – 'क्यों चले गये ?' जीव बोला – 'हम लोग जीव हैं,काल के अधीन हैं ।' महाप्रभु ने उससे कहा – 'तुम यहाँ आ जाओ । तुम्हारी माँ रो रही है ।' लड़के की जीवात्मा ने कहा – 'प्रभो ! संसार में न कोई माँ है, न कोई बेटा है, न बेटी है । केवल थोड़ी ही देर का सम्बन्ध होता है । घर -परिवार वालों का मिलन तो प्याऊ के समान है । प्याऊ में जल पीने के लिए लोग आते हैं, थोड़ी देर रुकते हैं फिर पानी पीकर चले जाते हैं । मेरा भी माताजी से थोड़ी ही देर का सम्बन्ध था, अब मैं नहीं आऊँगा क्योंकि ईश्वर की यही इच्छा है और मैं ईश्वर की इच्छा को नहीं तोड़ सकता हूँ ।' ऐसा कहकर वह जीव चला गया । गीता के अनुसार यदि हमें भगवान् की आत्मा, उनका हृदय बनना है तो इसके लिए ज्ञानी भक्त बनना होगा, जिसका लक्षण भगवान् ने बताया – एक भक्तिर्विशिष्यते – हे प्यारे ! तू जैसा चाहे वैसा कर । तू चाहे मुझे पाँवों से कुचल दे, मेरे लिए वही ठीक है । चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में कहा है – **'आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु माम्'** – हे कृष्ण ! तू यदि चाहे तो मुझे अपने पाँवों के नीचे कुचल दे अथवा मुझे आलिंगन करे । **'अदर्शनान् मर्महतां करोतु वा'** – मेरे मर्मस्थान को चोट पहुँचा, कुछ भी कर ले, मार डाल । **'यथा तथा वा विदधातु लम्पटो मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ।'** लम्पटता के कारण तू कुछ भी कर ले किन्तु मेरा प्राणनाथ तो तू ही है, और कोई नहीं है ।

इस प्रकार का ज्ञानी भक्त भगवान् की आत्मा बन जाता है । इस प्रकार से जो भगवान् का सतत स्मरण करता है, भगवान् कहते हैं कि मैं उसके लिए सुलभ हूँ अर्थात् उसे मिल चुका हूँ ।

प्राचीन काल में ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिनके हृदय में किसी प्रकार की भेदबुद्धि नहीं थी । प्रयाग में यमुना के उस पार अरैल गाँव में श्रीचैतन्य महाप्रभु और महाप्रभु वल्लभाचार्यजी का मिलन हुआ है । चैतन्य महाप्रभुजी वल्लभाचार्यजी के निवास स्थान में गये थे । वल्लभाचार्य जी ने उन्हें प्रसाद पवाया । दोनों की आपस में बड़े प्रेम से बातचीत हुई थी ।

हमारे (बाबाश्री के) गुरुदेव ने यही शिक्षा दी थी कि सभी में भाव रखो और सबको मानो क्योंकि नाभाजी ने लिखा है कि यदि चैतन्य महाप्रभु न होते तो बंग देश (बंगाल) जो बड़ा ही अपवित्र देश था, वह कभी पवित्र नहीं होता । प्राचीन काल के ब्राह्मण बंगाल नहीं जाते थे क्योंकि यह त्याज्य, अपवित्र देश था । नाभाजी ने भक्तमाल में चैतन्य महाप्रभु के बारे में लिखा है – बंग भूमि पावन कियो । चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल देश को पवित्र किया ।

सिर काटो छैदो हियो टूक टूक करि देहु । पै या बदले बिहँसि वाह वाह लेहु ॥

अज्ञात होने के कारण राधारानी को राधिका कहा जाता है । राधा तत्त्व खोलने में कितना श्रम पड़ा, स्वयं चैतन्य महाप्रभु का उदाहरण है । जब वे दक्षिण भारत की यात्रा में गये थे सार्वभौम जी ने महाप्रभु से कहा था कि आप वहाँ राय रामानन्द जी से भेंट करियेगा, वे विशाखाजी के अवतार माने जाते हैं । महाप्रभु चैतन्य दक्षिण भारत गये, वे कावेरी नदी के तट पर बैठे हुए थे । वहाँ उनका राय रामानन्दजी से मिलन हुआ । उस समय महाप्रभु तो बन गये जिज्ञासु श्रोता और उन्होंने राय रामानन्दजी को वक्ता बना दिया और उनसे बोले कि आप मुझे कृष्ण लीला का रहस्य समझाइये । यह बात वैसी ही है जैसे महाभारत युद्ध के बाद कृष्ण तो बन गये श्रोता और शर-शैय्या पर पड़े भीष्म पितामह को बना दिया वक्ता । भीष्म जी ने भगवान् कृष्ण से कहा भी कि महाराज ! आप ही इनको उपदेश दे दो । श्रीकृष्ण बोले – 'नहीं ! मेरी इच्छा है कि अन्तिम समय में आप पाण्डवों को उपदेश दीजिये ।' भीष्म जी समझ गये कि जो ये कहलवायेंगे, वही मैं कहूँगा । ये मुझे तो एक निमित्त बना रहे हैं । उसी तरह राय रामानन्दजी भी समझ गये और कभी-कभी महाप्रभु की प्रेम माधुरी में भूल भी जाते थे । दोनों ही बातें थीं । महाप्रभुजी प्रश्न पूछते थे और राय रामानन्द जी उत्तर देते थे । मूल बात यह थी कि महाप्रभु जी राधारानी के रहस्य तक पहुँचना चाहते थे और उस रहस्य को खोलने के लिए ही उन्होंने प्रश्न किया था । बहुत देर में वह रहस्य खुला । पहले महाप्रभु ने प्रश्न किया कि जीव का कल्याण कैसे होगा ? राय रामानन्द जी ने कहा कि शास्त्रों में चार पुरुषार्थ बताये गये हैं । '**पुरुषयैः अर्थयन्ते इति पुरुषार्थः**' – यह पुरुषार्थ की व्युत्पत्ति है । जो जीवों के लिए बनाया गया है, वह पुरुषार्थ है । राय रामानन्दजी ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चार पुरुषार्थों की लम्बी व्याख्या की । महाप्रभुजी ने कहा कि यह तो कुछ बाहरी बात है, आगे चलो, कुछ अन्तरंग बात बताओ । राय रामानन्दजी बोले कि अन्तरंग बात तो यह है कि मोक्ष आदि से भी आगे भगवान् की भक्ति है । अपने सभी कर्म भगवान् के लिए किये जायें । महाप्रभु जी ने कहा कि इससे आगे चलिए । यह तो बहिरंग बात है । सभी कर्म भगवान् के लिए किये जाएँ, यह तो एक बाहरी बात रही । राय रामानन्द जी ने कहा – जिसमें तत्त्वज्ञान होता है, ऐसी भक्ति करनी चाहिए । महाप्रभु जी ने कहा – और आगे चलिये । राय रामानन्द जी बोले – ज्ञान से रहित जो विशुद्ध भक्ति है, वह जीव का लक्ष्य है । महाप्रभुजी बोले – और आगे चलिए । राय रामानन्दजी ने कहा – इससे आगे यह है कि भगवान् के प्रति दास्य भाव की भक्ति करनी चाहिए । भगवान् का दास या सेवक भगवान् से बड़ा हो जाता है । राय रामानन्द जी सभी बातों का उदाहरण भी देते थे । महाप्रभु जी ने कहा – और आगे चलिए । दास और स्वामी में कुछ न कुछ अन्तर रहता है । दास स्वामी के सिंहासन पर नहीं बैठ सकता है, स्वामी की गोद में नहीं बैठ सकता है । स्वामी और दास में कोई न कोई दूरी रहती है ।

बड़े-बड़े आचार्य संसार में प्रकट हुए, उन्होंने राधा तत्त्व को खोला, नहीं तो संसार में राधा तत्त्व के बारे में कोई जानता ही नहीं था । चैतन्य महाप्रभु ने राय रामानन्द जी से कहा कि और भीतर चलिए । रामानन्द जी ने कहा – दास्य से आगे सख्य रस है । एक सखा अपने सखा के साथ खेलता है । उसके बराबर बैठता है, उसके साथ खाता-पीता भी है । ग्वालबाल कृष्ण को घोड़ा बनाते हैं । कृष्ण अपने सखाओं की जूठन लेते हैं, सखा भी कृष्ण की जूठन लेते हैं । सख्य रस भगवान् के और समीप पहुँचाता है । महाप्रभु जी बोले – और आगे चलो । कोई इससे भी अन्तरंग बात बताओ । राय रामानन्द जी ने कहा – सख्य से आगे वात्सल्य रस है । वहाँ शिशु माता का दूध पीता है । अंगों का मिलन हुआ तो यह और पास की बात हुई । महाप्रभुजी ने कहा कि और आगे चलो क्योंकि माता और पुत्र में भी सर्वांग मिलन नहीं होता है, मर्यादा होती है । तब राय रामानन्दजी ने कहा कि इससे आगे श्रृंगार रस है । नायिका अपने हर अंग से नायक की सेवा करती है । माता तो केवल स्तन पान ही करा सकती है लेकिन नायिका अपने प्रत्येक अंग से अपने प्रेमास्पद की सेवा कर सकती है । वहाँ किसी प्रकार की कोई मर्यादा नहीं होती है । महाप्रभुजी ने कहा कि इससे भी और आगे चलो । राय रामानन्द जी बोले – प्रभो ! इससे आगे तो केवल श्रीराधिका रानी का प्रेम है, जो श्रीकृष्ण को वश में करता है और जिनके लिए श्रीकृष्ण अनन्त गोपियों को छोड़कर चले जाते हैं ।

जब तक राय रामानन्द जी राधारानी तक नहीं पहुँचे थे, तब तक चैतन्य महाप्रभु प्रश्न करते रहे कि इससे आगे चलो, इससे अन्तरंग क्या है ? ऐसा होने पर सबसे आगे का, श्रीराधारानी का रहस्य खोला गया । सभी आचार्य चाहे वे गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य हों, चाहे राधावल्लभ सम्प्रदाय के हों, चाहे स्वामी हरिदास जी हों, इन सभी ने राधारानी के यश को गाया । स्वामी हरिदासजी ने लिखा कि श्रीराधिका रानी का ही आश्रय श्रीकृष्ण लेते हैं । स्वामी जी ने गह्वर वन के बारे में लिखा है कि यहाँ श्रीकृष्ण राधारानी की सेवा करते हैं । गह्वर वन में श्यामसुन्दर आते हैं और राधारानी के लिए शय्या सजाते हैं कि श्रीजी इस पर विराजेंगी । श्यामसुन्दर श्रीजी से गह्वरवन के बारे में कहते हैं –

'प्यारी जू आगे चल आगे चल गह्वरवन भीतर, जहाँ बोले कोयल री ।'

श्यामसुन्दर और सखियाँ श्रीजी से प्रार्थना करते हैं कि आप गह्वरवन में पधारिये । गह्वरवन इतना सुन्दर है कि कोयलें सदा वहाँ गाती रहती हैं । आपका नाम 'राधा-राधा' कहकर कोयल यहाँ सदा गाती रहती है ।

कोई यदि राधा-राधा प्रेम से कहता है तो निश्चित समझो कि उसको प्रेम का धन मिल गया, रस मिल गया । राधासुधानिधि में लिखा है – **देवानामथ भक्तमुक्तसुहृदामत्यन्तदूरं च यत् प्रेमानन्दरसं महासुखकरं चोच्चारितं प्रेमतः ।**

प्रेम्णाकर्णयते जपत्यथ मुदा गायत्यथालिष्वयं जल्पत्यश्रुमुखो हरिस्तदमृतं राधेति मे जीवनम् ॥ (श्रीराधासुधानिधि – ९६)

कोई **'राधा-राधा'** कहता है तो श्रीकृष्ण उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं, सुनते हैं कि यह क्या कह रहा है ? **'राधा-राधा'** नाम कोई भी कहता है तो श्रीकृष्ण उसके पीछे दौड़ पड़ते हैं, वे कहते हैं कि **'राधा'** नाम मैं और अधिक सुनना चाहता हूँ । तुम 'राधा-राधा' कहो, मैं सुनूँगा । श्यामसुन्दर दिन-रात 'राधा' नाम का जप करते हैं । जब सखियाँ बैठती हैं तो उनके बीच में 'राधा' नाम का कीर्तन करते हैं । वे सखियों को साथ लेकर राधा नाम गाते हैं और रास में भी 'राधा' नाम लेकर नाचते हैं । वंशी में भी 'राधा-राधा' गाते हैं । जब श्यामसुन्दर राधा नाम लेते हैं तो राधा नाम लेते ही उनकी आँखों से प्रेम के आँसू निकलने लगते हैं । वे आँखों में आँसू भरकर 'राधा-राधा' बोला करते हैं । वह 'राधा' नाम इतना दूर है कि जिसको देवता, भक्तगण और श्रीकृष्ण के सुहृद भी नहीं जान सकते हैं । उस 'राधा' नाम को महापुरुषों ने प्रकट किया, नहीं तो शुकदेवजी ने भी भागवत में उसको छिपा लिया था, 'राधा' नाम उन्होंने भागवत में स्पष्ट नहीं कहा है ।

सुदैन्य-भाव ही भक्ति

सनातन गोस्वामीजी के अन्दर इतना दैन्य था कि वे सोचने लगे कि मैं आत्महत्या करके इस नीच शरीर का त्याग कर दूँ । ऐसा वे इसलिए सोचते थे क्योंकि उनके शरीर में भयंकर चर्म रोग खाज हो गयी थी । महाप्रभु प्रतिदिन आते थे और उनके शरीर का आलिंगन करते थे तो उस खाज का दूषित रस उनके शरीर में लग जाता था, इसी कारण से सनातनजी को बहुत कष्ट होता था, वे नहीं चाहते थे कि उनके खाज युक्त शरीर को महाप्रभु आलिंगन करें । सनातन जी ने सोचा कि पुरी में जगन्नाथ जी की रथ यात्रा के समय उनके रथ के पहिये के नीचे दबकर शरीर का त्याग कर देना चाहिए । यह कितनी बड़ी दीनता है । हम जैसे अभिमानी लोग तो ऐसी कथा कहने के अधिकारी ही नहीं हैं क्योंकि हम लोगों में ऐसी दीनता कहाँ है ? चैतन्य महाप्रभु अन्तर्यामी थे, वे समझ गये कि सनातन गोस्वामी आत्महत्या करके अपने शरीर को नष्ट करना चाहते हैं और ये ऐसा कर लेंगे क्योंकि भगवान् के भक्तों में अपने शरीर के प्रति कोई गौरव बुद्धि तो होती नहीं है । महाप्रभु जी ने सनातन गोस्वामी के सामने हरिदास ठाकुर से कहा – हरिदासजी ! सनातन ने अपना शरीर मुझे अर्पित किया है तो इसे समाप्त करने का इसको क्या अधिकार है ? मेरी वस्तु को यह नष्ट करना चाहता है । जब हमने सब कुछ प्रभु को समर्पित कर दिया तो फिर उसमें हमारा अधिकार कैसे हो सकता है ? हमें न तो जीने का अधिकार और न मरने का । हमें आत्महत्या करने का अधिकार नहीं है । शरीर हमारा तो है नहीं जो हम इसे मार दें । सनातन ! यह तुम्हारा कैसा समर्पण है ?

दीनता की एक पराकाष्ठा होती है । धन्य हैं वे भक्त, जिनको शरीर में रहने पर भी शरीर के प्रति लेश मात्र भी अहं नहीं होता है । उनका तिनका बराबर भी शरीर में अहं नहीं होता है क्योंकि वे तिनके से भी अधिक दीन हो जाते हैं - तृणादपि सुनीचेन । तिनके से ज्यादा दीन वे कैसे हो जाते हैं ? यदि घास पर पाँव रखो तो घास मना नहीं करती है, झुक जाती है लेकिन चले जाने पर घास थोड़ी ही देर में उठ जाती है किन्तु भक्त नहीं उठता है क्योंकि वह घास के तिनके से भी ज्यादा दीन होता है । हम सभी लोग भक्त हैं किन्तु क्या कोई भक्त दूसरे भक्त के शरीर को चिन्मय (दिव्य) मान सकता है, नहीं मान सकता है । इतनी श्रद्धा किसी में नहीं है जबकि भक्त के शरीर को चिन्मय मानना चाहिए । इसीलिए तो भक्तों का जूठन लिया जाता है या उनका चरणामृत लिया जाता है । भक्त के शरीर को चिन्मय मानना जरूरी है । सनातन गोस्वामीजी वृन्दावन से झारखण्ड के जंगल से होते हुए चैतन्य महाप्रभु से मिलने जगन्नाथ पुरी गये थे । झारखण्ड में उनके शरीर में ऐसी खाज हो गयी थी कि उससे बड़ी बुरी दुर्गन्ध निकलती थी और उससे गन्दा रस चूता था । इसीलिए पुरी में पहुँचकर भी सनातन जी किसी भक्त का दर्शन करने नहीं जाते थे कि मेरा शरीर बड़ा ही अधम है । चैतन्य महाप्रभुजी सनातनजी को आलिंगन किया करते थे, इसी डर से वे भागने लगे कि मैं वृन्दावन चला जाऊँगा । नीलाचल में ऐसी हालत में आकर तो मुझसे बड़ा ही पाप हुआ । महाप्रभु मानते नहीं हैं और मेरे शरीर का आलिंगन करते हैं, जबकि इस शरीर से गन्दा रस निकलता है, दुर्गन्ध आती है । सनातन जी ने महाप्रभु से कहा भी – 'प्रभो ! अब तो मैं वृन्दावन जा रहा हूँ ।' महाप्रभु ने पूछा – 'क्यों ?' सनातनजी बोले – 'मेरा यह शरीर तो अब पापमय हो गया है । आप इसका आलिंगन करते हैं । आप इस अधम शरीर से लिपटते-चिपटते हैं, जबकि इसमें केवल दुर्गन्ध है, विकृत रस है ।' उस समय चैतन्य महाप्रभु ने बड़ी ही सुन्दर बात कही – 'सनातन ! तुम्हारा यह शरीर चिन्मय है । मैं अपने शरीर को पवित्र करने के लिए तुम्हारे शरीर का आलिंगन करता हूँ ।'

ऐसा कौन है, जो खाज से दूषित रस निकलने वाले दुर्गन्ध युक्त शरीर को चिन्मय मान लेगा ? ऐसी किसकी श्रद्धा है, किसकी सामर्थ्य है लेकिन यही भक्ति पथ है । यदि इतनी श्रद्धा है तो इस भक्ति मार्ग में आगे आओ, नहीं तो कुछ नहीं मिलेगा । राम ते अधिक राम कर दासा । भक्त को भगवान् से बढ़कर मानना ही पड़ेगा । यहाँ पर एक सिद्धान्त बताया गया है कि जिस दिन से मनुष्य भगवन्नाम लेता है, भक्ति मार्ग में आता है, उसी दिन से उसका शरीर चिन्मय हो जाता है लेकिन उसका अनुभव धीरे-धीरे होता है । भगवान् इतने कृपालु हैं कि जिस समय जीव उनकी ओर चलता है, उसी समय से वे उसको चिन्मयता का प्रमाणपत्र (certificate) दे देते हैं किन्तु उसकी अनुभूति प्राकृत लोगों को नहीं होती है । वैसी श्रद्धा हम लोगों में नहीं है लेकिन ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए । इतनी गहरी श्रद्धा दिखाई नहीं पड़ती है कि भगवान् के भक्त का शरीर चिन्मय होता है । अगर ऐसा भाव किसी में आ जाये तो उसके पास से भक्ति की सुगन्ध फैलने लग जायेगी ।

अनासक्ति से 'आराध्य-कृपा'

सनातन गोस्वामीजी रूप गोस्वामीजी के बड़े भाई थे । इनके पास इतनी अपार सम्पत्ति थी कि जिसके बारे में क्या कहा जाए ? मुसलमान बादशाह ने सनातनजी को जेल में डाल दिया था क्योंकि वे वृन्दावन जाना चाहते थे । खैर, लाखों रुपये घूस में देकर वे जेल से वे किसी तरह छूटे । वे जब वृन्दावन जा रहे थे तो रास्ते में उन्हें पटना में एक रिश्तेदार मिले । वे सनातन जी को देखकर रोने लगे परन्तु सनातन जी ने कह दिया कि मैं तो वृन्दावन अवश्य ही जाऊँगा । उन्होंने सनातनजी को एक बहुत ही कीमती भूटानी कम्बल दिया, जिसकी जाड़े में ओढ़ने की आवश्यकता पड़ेगी । सनातन जी के पास जाड़े के लिए शरीर को सर्दी से बचाने लिए ओढ़ने के लिए भी कोई वस्त्र नहीं था, खाने-पीने के पदार्थ की बात तो दूर रही । सनातन जी उस भूटानी कम्बल को लेकर काशी आये, जहाँ चैतन्य महाप्रभु पहले से आये हुए थे । सनातनजी कीमती भूटानी कम्बल को पाकर प्रसन्न नहीं थे । उसे तो उनके रिश्तेदार ने जबरदस्ती उन्हें दे दिया था । सनातनजी ने उनके प्रेम के बहुत अधिक दबाव के कारण उसे ले लिया था लेकिन उसके कीमती होने का कोई ध्यान

नहीं था क्योंकि मन की एक ऐसी विशेष स्थिति हो जाती है, जब बढ़िया-घटिया का कुछ भी भान नहीं रहता । सनातन जी लोभी नहीं थे क्योंकि वे बंगाल के बादशाह के प्रधान मन्त्री थे और विरक्त होने पर उन्होंने अपनी करोड़ों की सम्पत्ति का त्याग कर दिया था लेकिन उन्हें रास्ते में जो कम्बल मिल गया तो अनजान में उन्हें यह आभास नहीं रहा कि यह कीमती वस्तु है । जिसने सदा से राज सुख भोगा है, उसके लिए तो वह कम्बल एक बहुत ही मामूली सी वस्तु थी । जब सनातन जी काशी में चैतन्य महाप्रभु से मिले तो उनकी दृष्टि बार-बार सनातन जी के कम्बल पर जाती थी । क्या महाप्रभु जी उनके कम्बल से द्वेष करते थे ? नहीं, महाप्रभु जानते थे कि संसार की किसी छोटी सी वस्तु की भी स्पृहा करने से मनुष्य के मन का अधःपात हो जाता है क्योंकि वह वस्तु मन को अपनी ओर खींच लेगी । यदि आपको बढ़िया शाल प्राप्त होता है तो यह बढ़िया है – ऐसा भाव होने से मन का आकर्षण उसके प्रति हो जायेगा । यदि मन का आकर्षण हुआ तो मन रूपी हीरा तो उस तुच्छ वस्तु शाल या कम्बल में चला गया और हम उसको समझ नहीं पाए । भागवत में भी कहा गया है – **योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ।**

प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ (श्रीभागवतजी ११/८/८)

स्त्री को देखने की ओर मन गया तो चलो, रामायण में तो स्त्री के बारे में कहा गया ही है – **'नारि विष्णु माया प्रगट'** हिरण्य (सोना) में मन गया तो चलो, सोने की भी अधिक कीमत होती है । अच्छा कपड़ा आ गया और मन में सोचने लगे कि अरे, यह तो बड़ा ही चमकीला है, इस कपड़े का नाम है 'सलील' । अब मन सलील में ही घुस गया । इसीलिए तो भागवत में कहा गया है – 'योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः' – ये जितने भी माया के द्वारा रचित स्त्री, सोना, आभूषण, कपड़े आदि वस्तुयें हैं तो इनको देखकर मन में लोभ घुस जाता है और इनका उपभोग करने की बुद्धि हो जाती है तो जिस प्रकार पतंगा अग्नि की ज्वाला को देखकर उसको भोग करने के लिए जाता है तो जल जाता है इसी प्रकार माया से रची हुई वस्तुओं को देखकर मनुष्य के मन में उनका उपभोग करने की बुद्धि होती है तो वह भी पतंगे की तरह नष्ट हो जाता है । संसार की छोटी-छोटी वस्तुओं में हमारा मन घुस जाता है, यदि हमारी वृत्ति संसार की इन अत्यन्त छोटी चीजों की ओर न जाए और अनन्य रूप से श्रीराधारानी का आश्रय लिया जाए तो श्रीजी हमारे हृदय की मणि बन जाएँगी । एक बार महाप्रभु चैतन्य को नीलाचल में जगन्नाथ जी के मन्दिर के पुजारी ने प्रसाद दिया । उसको पाते ही उनकी प्रेम की विचित्र दशा हो गयी । वे प्रेम के मतवालेपन में वहाँ से दौड़े यह कहते हुए – 'सुकृत फेना लव' – 'अरे यह तो उनका अधरामृत है, बड़े ही भाग्यशाली को मिलता है ।' ऐसा कहते हुए वे जा रहे थे । जिस-जिसको भी उन्होंने उस प्रसाद की कणिका दी, उन सभी ने कभी भी अपने जीवन में ऐसा स्वाद नहीं पाया था । उस प्रसाद में कुछ अद्भुत सुगन्ध थी, अद्भुत रस था, सब बातें अद्भुत थीं । उस प्रसाद को पाकर सब आश्चर्य में पड़ गये । इसका क्या कारण है ? जगन्नाथजी का प्रसाद तो वे प्रतिदिन ही पाते थे । उस दिन साक्षात् श्रीकृष्ण का अधरामृत उस प्रसाद में था । प्रश्न यह है कि उसी दिन क्यों था क्योंकि भोग तो रोज लगता है । इसका कारण बताया गया कि भोग तो प्रतिदिन लगता है लेकिन भगवान् द्वारा उसे पाने की शैलियाँ बहुत प्रकार की हैं । साक्षात् भाव से पाना अलग है । जब कोई व्यक्ति भोग लगाता है तो प्रभु प्रायः दृष्टि के द्वारा ही उसे पाते हैं । छप्पन भोग उनके सामने रखा जाता है तो प्रभु दृष्टि के द्वारा ही उसे देख लेते हैं तो भोग लग जाता है अथवा प्रभु के भोग पाने का एक और ढंग होता है – **साँचे मन्दिर हरि के संत । जिन मह राधा मोहन जेवत, पाँचों स्वाद बदन्त ॥** भगवान् भक्तों की जिह्वा पर बैठकर भोग पाते हैं, क्योंकि भक्तों की आसक्ति अन्यत्र कहीं न होकर एकमात्र श्रीइष्ट में ही होती है, इसलिए श्रीराधामाधव भी अपने प्रेमीजनों के हृदयकमल में सदा विराजमान रहते हैं ।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का
Account number दिया जा रहा है –
SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd , A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN, MOB. NO. –9927916699

गौ-सेवा से श्रीकृष्णप्रेम-प्राप्ति सहज

बाबाश्री के सत्संग 'गोसेवा-महिमा' (१०/४/२०१२) से संकलित

श्रीगह्वरवन में रणछोड़दासबाबा नामक एक सिद्ध महात्मा रहा करते थे । वर्तमान में दानगढ़ की ओर जाते समय बायीं ओर उनकी संगमरमर की समाधि बनी हुई है । वे गायों की सेवा करने से सिद्ध हुए । वे कहते थे कि बिना गोसेवा के श्रीकृष्णभक्ति सिद्ध नहीं होती है । एकबार आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती से उनकी भेंट हुई, उनके साथ शास्त्रार्थ हुआ किन्तु रणछोड़ दास बाबा के सामने उनको पराजित होना पड़ा । यह घटना उनके जीवन-चरित्र से सम्बन्धित पुस्तक 'गह्वर प्रदीप' में लिखी है । वे श्रीजी मन्दिर के भण्डार की सेवा करते थे और साथ ही गायों की भी सेवा किया करते थे । ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार भगवान् कृष्ण ने नन्दबाबा को गोसेवा के बारे में उपदेश किया था । गोपालजी ने नन्दबाबा से कहा कि आप लोग इन्द्र की सेवा क्यों करते हो ? गोपालजी ने कहा – **सर्वे देवाः गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च । तद् गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदार्पितः ॥** हे बाबा ! ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि समस्त देव गाय के अंग में ही रहते हैं । इस ब्रह्माण्ड में जितने भी तीर्थ हैं, वे गाय के चरणों में रहते हैं । गाय के गुह्य अंग अथवा गोबर में लक्ष्मीजी रहती हैं । गुह्य अंग सबसे निकृष्ट माना जाता है क्योंकि उससे मूत्र निकलता है किन्तु गाय के गुह्य अंग में लक्ष्मी का वास है । वहाँ लक्ष्मी क्यों रहती हैं ? इसकी एक कथा है । एकबार लक्ष्मीजी स्वर्ग गयीं । भगवान् को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने सभी देवताओं से कहा कि तुम लोग गाय के अंग में निवास करो । इसके बाद लक्ष्मीजी गाय के पास गयीं तो गोमाता ने उनको स्वीकार नहीं किया । गोमाता ने लक्ष्मीजी से कहा कि मेरे अंगों में सभी देवता भर गये हैं, अब जगह नहीं बची है । लक्ष्मीजी ने पूछा कि कोई खाली जगह नहीं है ? गाय ने कहा कि तुम देख लो । लक्ष्मीजी ने देखा तो गाय का गुह्य अंग खाली था । उन्होंने गोमाता से कहा कि मुझे यहाँ स्थान दे दो । गोमाता प्रसन्न हो गयी और बोली – 'ठीक है ।' इसीलिए गाय के गोबर में लक्ष्मीजी का निवास माना गया है । ये भगवान् के वचन हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा से कहा कि हे पिताजी ! स्वयं लक्ष्मीजी गाय के गुह्य अंग (गोबर) में रहती हैं – सर्वे देवाः गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च । तद् गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदार्पितः ॥ भगवान् ने गाय की महिमा से सम्बन्धित श्लोक कहे हैं ।

गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम् । प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेदं ध्रुवम् ॥

गायें जहाँ रहती हैं, वह स्थान संसार का सबसे बड़ा तीर्थ है । गोशाला में प्राण त्याग करने वाला तुरन्त ही मुक्त हो जाता है, भवसागर के पार हो जाता है । यदि कुछ नहीं कर सकते हो तो श्रद्धा के साथ गोशाला में जाकर प्राण त्याग कर दो । अवश्य ही मुक्त हो जाओगे, भवसागर से पार हो जाओगे ।

गोष्पदाक्त मृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः । तीर्थ स्नातो भवेत सद्यो जयस्तस्य पदे पदे ॥

जिसने गाय के खुर की रज से तिलक कर लिया, वह सारे ब्रह्माण्ड के तीर्थों में स्नान कर आया । उसे गंगा, यमुना, गोदावरी आदि किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं है । ऐसा भगवान् ने कहा है । इसलिए जो गोभक्त नहीं है, वह कृष्णभक्त नहीं है ।

पूज्य सदगुरुदेव बाबाश्री बताते हैं कि मेरे (बाबाश्री के) पिताजी बहुत बड़े गोभक्त थे । हमारे घर में एक गाय थी । वे गाय को कुछ खिलाने के बाद ही भोजन करते थे । जब वे गाय के पास बैठ जाते थे तो गाय उनकी पीठ को घण्टों तक अपनी जीभ से चाटती थी । उस समय वे बैठे रहते थे । जब किसी की मृत्यु होती है तो उसके नाम पर पिण्डदान किया जाता है और उस पिण्ड को लोग पशुओं को खिला देते हैं । जब मेरे पिताजी की मृत्यु हुई तो उनके नाम से पिण्ड गाय को खाने के लिए दिया गया तो उसने सिर हिलाकर खाने से मना कर दिया और रोने लगी । उस समय सब लोग

समझ गये कि गाय में अन्तर्यामीपन की शक्ति होती है । जब गाय रोने लगी तब सभी लोग समझ गये कि ये इसलिए रो रही है कि यह मेरे पुत्र का पिण्ड है । लोगों ने कई तरह से उसे खिलाने का प्रयत्न किया किन्तु वह मना करती रही और रोती रही । उसने उस पिण्ड को नहीं खाया । दूसरी गायों ने उस पिण्ड को खा लिया । मेरी माताजी भी गोभक्त थीं । जब वे प्रयाग से बरसाना आयीं तो उन्होंने एक ऐसे ब्राह्मण को गौ-दान किया, जो आजीवन गाय की सेवा करता रहे । उन्हीं के नाम से यहाँ गोशाला की स्थापना की गयी । लोगों ने हमसे पूछा कि इस गोशाला का नाम क्या रखें तो हमने कहा कि 'माताजी गोशाला' नाम रख दो । थोड़े ही समय में यह विश्व की सबसे बड़ी गोशाला बन गई है । बहुत शीघ्र ही यह गोशाला इतनी अधिक उन्नति कर गयी, इसका मूल कारण यही था कि मेरे माता-पिता बड़े ही गोभक्त थे ।

रणछोड़दास बाबा कहते थे कि गो-सेवा से अति शीघ्र ही कृष्णभक्ति सिद्ध होती है । वे बहुत प्रेम से गोसेवा करते थे । उनकी गायों के नाम थे गंगा, यमुना.....। एक बार यमुना नामक गाय को बछड़ा पैदा होते समय बहुत कष्ट हुआ तो उन्होंने कहा – 'यमुना ! अब तू मत ब्याना ।' उनके कहने का यह परिणाम हुआ कि उस गाय ने दुबारा किसी बछड़े या बछिया को जन्म नहीं दिया । वे इतने बड़े सिद्ध महात्मा थे । गोवंश से उनका अपार प्रेम था ।

रणछोड़बाबा गोपालसहस्त्रनाम का पाठ करते थे, वे पाठ करते रहते थे और साथ ही गोसेवा करते रहते थे । जैसे ब्रजगोपियाँ गौ-सेवा करती थीं और कृष्णगुण गाती थीं । भागवत में गोपिकाओं की दिनचर्या का वर्णन किया गया है कि वे किस प्रकार सेवा करती थीं – '**या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।**

गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकुण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ (श्रीभागवतजी १०/४४/१५)

गोपियाँ गाय दुहती थीं, दही मथती थीं, धान कूटती थीं, उपलेप अर्थात् घर में मिट्टी का लेप करती थीं, अपने बच्चे को पालने में झुलाती थीं; ये सब कार्य करते हुए वे अनुराग के साथ सदा श्रीकृष्ण का गुण गाती रहती थीं । इसी श्लोक के आधार पर हमने छोटा-सा पद भी बनाया है – '**गोविन्द गोपाल मोहन मुरारी राधा रसिक श्याम राधा बिहारी । जल भरने को गोपी चली है, गागर उठा कर यमुना निकेती, बहते हुए जल ने यह ये गीत गाया, राधा रसिक श्याम राधा बिहारी । ले ले मथानी दधि को बिलोती, गाती मधुर बैन कहती सप्रीति, प्यारी मथानी तू ये गीत गा दे, राधा रसिक श्याम राधा बिहारी । दोहनी लिए गोद गायों को दुहती, आ दूध पी ले कन्हैया, ये कहती, मेरी तू प्यारी गैया ये गा दे, राधा रसिक श्याम राधा बिहारी । श्याम मिलन को बेचन चली दधि, दधि लो ये भूली औ हरि लो ये कहती, मटकी लिए शीश गाती दिवानी, राधा रसिक श्याम राधा बिहारी । बैठी रसोई करती ये गाती, आ श्याम तुझको मैं व्यंजन बनाती, व्यंजन बनाती औ भोग लगाती, राधा रसिक श्याम राधा बिहारी ।**' इसका आशय यही है कि गोपियाँ हर काम को कर रही हैं, दही मथ रही हैं, रसोई कर रही हैं, गाय दुह रही हैं तो हर समय अनुराग के साथ कृष्ण गुण गा रही हैं । इसी प्रकार रणछोड़दासबाबा गोसेवा करते थे किन्तु हर समय उनके द्वारा गोपालसहस्त्रनाम का पाठ चलता रहता था । एक बार की बात है कि एक द्वेषी व्यक्ति ने उनके विरुद्ध आधी रात को भैरव का अभिचार किया और एक काले रंग का भयानक कुत्ता उनकी कुटिया की ओर बढ़ा, उस समय बाबा शयन कर रहे थे तो कहीं से आवाज आई – 'उठ ! गोपालजी का पाठ कर ।' उसी समय रणछोड़ बाबा उठ गये और गोपालसहस्त्रनाम का पाठ करने लगे । अभिचार के द्वारा भेजा गया कुत्ता बाबा को मारने के लिए आया था किन्तु उसने बाबा को पाठ करते हुए देखा तो तुरन्त ही लौट गया और भेजने वाले उस द्रोही पर ही हमला कर दिया । रणछोड़ बाबा गोपालजी के सिद्ध भक्त थे । वे बहुत बड़े गोसेवी महात्मा थे और कहते थे कि गोसेवा से कृष्णभक्ति सहज ही सिद्ध हो जाती है ।

ब्रजशरण

श्रीमाताजी गौशाला,
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीमाताजी गौशाला में
७०,००० गौवंश की
मातृवत् सेवा

‘पूज्यश्री बाबामहाराज’ शीत ऋतु में गौसेवकों
को कम्बल वितरण करते हुए

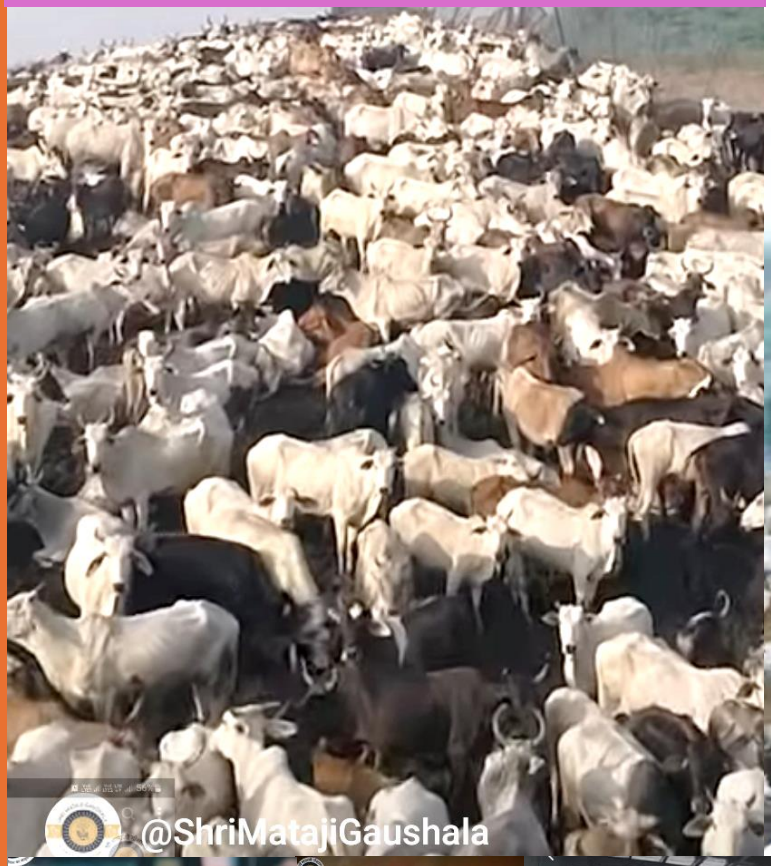

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26]